वरीतुं योग्यमतिशयेनेतिभावः ॥११॥

इति भगवद्रामानन्दाचार्यविरचिते मुण्डकोपनिषद आनन्दभाष्ये

द्वितीयमुण्डके द्वितीयः खण्डः ॥२-२॥

संपूर्ण जगत् ब्रह्मात्मक है इस वात को बतलाते हुए उपसंहार करते हैं-'**ब्रह्मैवेदमित्यादि**' पुरस्तात् आगे में जो दृश्यमान पदार्थ है अथवा अदृश्यमान पदार्थ है वह सब अमृत अविनाशी ब्रह्म ही है अर्थात् पदार्थमात्र अमृतरूप जो ब्रह्म तदात्मक तत्स्वरूप ही है। पश्चात् पृष्ठभाग अर्थात् पश्चिम दिशा में जो जो पदार्थ अवस्थित हैं वह सब ब्रह्मात्मक ही है। '**दक्षिणतः**' अर्थात् दक्षिण दिशा में तथा उत्तर दिशा में जो कोई पदार्थ विद्यमान हैं वे सभी पदार्थ ब्रह्मात्मक ही हैं। ऊर्ध्व दिशा में अधोदिशा में अर्थात् ऊपर अधः प्रदेश में व्याप्त जो जो पदार्थ हैं वे सबके सब ब्रह्मात्मक ही हैं इसलिये यह संपूर्ण जगत् ब्रह्मात्मक ही है। सबका आत्मभूत ब्रह्म वरिष्ठ है अर्थात् वरणीयतम है क्योंकि ब्रह्म परमानन्द स्वरूप है और परमप्राप्य है इसलिये सबसे प्राप्त करने के योग्य हैं ॥११॥

卐 इति भगवद्रामानन्दभाष्यप्रकाशे

द्वितीयमुण्डके द्वितीयः खण्डः 卐

卐 अथ तृतीयमुण्डके प्रथमः खण्डः 卐

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्य नश्नन्नन्योऽभिचाकशीति ॥१॥

एक साथ रहनेवाले तथा समान गुणों द्वारा मित्रभाव वाले दो जीवात्मा एवं परमात्मारूप पक्षी एक ही शरीररूप वृक्ष के आश्रयण से रहते हैं उन दोनों में से एक जीवात्मा शरीररूप पिप्पल वृक्ष के स्वकर्मरूप स्वादु फलों को खाता है अन्य परमात्म भक्षण न करता हुआ ही सर्वतोभाव से प्रकाशित होते हैं ॥१॥

सर्वशरीरप्रविष्टं यदि परंब्रह्म तदा तस्यापि जीव वद् भोक्तृत्वमापद्येतेति शंकां निरस्यन् प्रणवो धनुरित्यत्र प्रोक्तेऽक्षरब्रह्मणः परविद्यागम्यस्योपायभूते योगे सहकारिणमुपायं सत्यादिरूपं बोधयितुमाह–द्वा सुपर्णा इति । द्वेत्यादौ पदत्रये प्रथमाद्विवचनस्यौकारस्याकारभावश्छान्दसः । द्वा द्वित्वसंख्याकौ सुपर्णा सुपर्णसदृशौ सुपर्णस्तु पक्षी काकहंसादिस्तत्सादृश्यं परमात्मन एक वृक्षाश्रयणवत्त्वात् । संकल्पशक्तिभ्यां परमात्मनः शरीरेऽनुप्रवेशः कर्मज्ञानाभ्यां च जीवस्येति तयोरेव पर्णत्वमारोपितं देशाद्देशान्तरप्राप्तिसाधनत्वात् । सयुजा सह युक्तः इति सयुजौ सर्वदा सह योगवन्तौ । शरीरे हि सहयोगो भवति जीवपरमात्मनोः । एकस्य

नियम्यतयाऽपरस्य च नियामकतया एकत्र वर्तमानत्वात् । सखायौ अपहतपाप्मत्वादयो हि गुणाः स्वाभाविकास्तयोः समाना अतः तादृशगुणैः सखित्वमनयोः कल्प्यते तेन सखिभावमापन्नावित्यर्थः । एकत्र सहवासतो वा सखायौ । समानमेकं वृक्षं शरीरम् । ओ व्रश्चू छेदन इति धातोर्निष्पन्नो वृक्षशब्दः छेदन योग्यो भवति शरीरमपि तादृशगुणयोगीति वृक्षत्वेन रूपितम् । परिषस्वजाते परिष्वक्तवन्तौ समाश्रितवन्तावित्येतत् । पक्षिणामपि फलभक्षणाय वृक्षमेकं समाश्रयतः तद्वज्जीवात्मपरमात्मानावपि शरीरमेकं कर्मभोगाय समाश्रितवन्तावितिभावः । किन्तत्रद्वावपि तौ पक्षिवत् फलभोगपरायणाविति शंकायामाह-तयोरन्यः तयोर्जीवपरमात्मनोरन्यः परमात्मापेक्षया भिन्नः । कर्मवश्यो जीवात्मेत्यर्थः । स्वादुनानाविधस्वादविशिष्ट पिप्पलं कर्मफलं सुखदुःखात्मकम् । सुखदुःखयोर्वैविध्येन नानास्वादविशिष्टत्वं युक्तमेव । अत्ति भुंक्ते । अन्यः कर्मफलभोक्तुर्जीवाद् भिन्नोऽकर्मवश्यः स्वसंकल्पशक्तियोगान्नियामकतया शरीरमनुप्रविष्टः परमात्मा । अनश्नन् कर्मफलमभुञ्जान एव । अभिचाकशीति अभितः प्रकाशते प्रसन्न एव भवति । यद्वा अभिचाकशीति प्रेरयति कर्मफलभोगाय स्वकीयं

सखायं यतः स एव नियामकः सर्वस्य । धातूनामने कार्थत्वात् प्रेरणार्थः शक्यसंभवः । अत्र तयोरन्योऽन श्नन्नन्यः इत्युभयथा जीवपरमात्मनोर्भेदः प्रदर्शितः तेन जीवः परमात्मापेक्षयाऽत्यन्तं भिन्न इति दृढीक्रियते तस्मात्पराभ्युपगतं जीवब्रह्मणोरैक्यं निरस्तं वेदि-तव्यम् ॥१॥

यदि परमात्मा सर्वशरीर में प्रविष्ट हैं तब तो जीव के समान ब्रह्म में भी भोक्तृत्व की आपत्ति होगी ? एतादृश शंका का निराकरण करते हुए **'प्रणवो धनुः'** इस स्थल में कथित अक्षर ब्रह्म के जो कि परविद्या गम्य उसकी प्राप्ति में उपायभूत योग में सहकारी जो सत्यादिरूप उपाय है तादृश उपाय को समझाने के लिये कहते हैं-**'द्वा सुपर्णा'** इत्यादि । पद त्रय में प्रथमा विभक्ति के द्विवचन औ का आकार आदेश छान्दस है । द्वा अर्थात् द्वित्व संख्या वाला सुपर्ण, सुपर्ण सदृश सुपर्ण काक हंस प्रभृतिक तत्सादृश्य है जीव एवं परमात्मा में, क्योंकि एक शरीररूप वृक्ष पर आश्रित होने से । संकल्प तथा शक्ति के द्वारा परमात्मा इस शरीर में प्रविष्ट होते हैं और कर्म तथा ज्ञान द्वारा जीव का अनुप्रवेश इस शरीर में होता है, इसलिये इन दोनों में सुपर्णत्व का आरोप किया गया है एक देश से देशान्तर प्राप्ति के

साधन होने से । **'सयुजा'** ये दोनों सर्वदा संयुक्त रहते हैं अर्थात् इस शरीर में सर्वदा जीवात्मा परमात्मा का सहयोग रहता है । क्योंकि जीव नियम्य है और पर मात्मा नियामक है अतः दोनों एकत्र विद्यमान रहते हैं । **'सखायौ'** अपहतपाप्मत्वादिकगुण उन दोनों में स्वा भाविक है समान है अतस्तादृशगुण से वे दोनों सखि भाव को प्राप्त किये हैं । अथवा शरीररूप एक अधि करण में सहवास होने से वे दोनों सखा हैं । समान एक वृक्षरूप शरीर पर **'ओव्रश्चु छेदने'** इस धातु से निष्पन्न वृक्ष शब्द छेदन योग्य होता है शरीर भी एतादृश गुणयुक्त है अतः वृक्ष की उपमा से शरीर को उपमित किया है । **'परिष्वक्तवन्तौ'** उक्तशरीर वृक्ष पर दोनों समाश्रित हैं । जिस तरह दो पक्षी फल-भक्षण करने के लिये एक वृक्ष का आश्रय लेते हैं उसी तरह जीवात्मा तथा परमात्मा एक शरीररूप वृक्ष का आश्रय लेते हैं कर्मफल के उपभोग करने के लिये । तो क्या जीवात्मा परमात्मा दोनों ही फलभोग में तत्पर होते हैं इस शंका के निराकरण करने के लिये कहते हैं-**'तयोरन्यः'** इत्यादि । इन दोनों जीव परमात्मा के मध्य में कर्म पराधीन जीवात्मा जो कि परमात्मा से भिन्न है अनेक प्रकारक सुस्वादु पिप्पल कर्मफल का भोग करता है ।

और कर्मफल भोक्ता जीव से भिन्न परमात्मा जो कि कर्मपराधीन नहीं है वह स्वकीय संकल्प तथा शक्ति योग से नियामक रूपसे शरीर में अनुप्रविष्ट परमात्मा कर्मफल का भोग न करते हुए ही प्रकाशित होते हैं अर्थात् सु प्रसन्न सर्वदा रहते हैं। अथवा कर्मफल भोग करने के लिये अपने सखा को प्रेरित करते हैं जिसलिये परमात्मा ही सबके नियामक हैं। यहाँ **'तयोरन्यः'-'अनश्नन्'** इस तरह कथन से जीव तथा परमात्मा में भेद बतलाया गया। अतः जीव परमात्मा की अपेक्षया अत्यन्त भिन्न है इसे दृढ किया गया। तस्मात् जीवात्मा परमात्मा में जो अत्यन्त अभेद मानते हैं उनका मत वेद-शास्त्र से अत्यन्त विरुद्ध होने से परास्त हो जाता है ॥१॥

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः। जुष्टं यदा पश्यत्यन्य मीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥२॥

समान शरीररूप वृक्ष में निमग्न-समानरूपता को प्राप्त हुआ भोग्य रूपा प्रकृति द्वारा मोह प्राप्त जीवात्मा शोक करता रहता है पर जब यह जीव अपने शरीर से भिन्न सर्वशेषी शरणागत साधकों से सेवित सर्वेश्वर श्रीरामजी एवं उसकें सर्वजन नियन्त्रणरूप महिमा को देख या अनुभव कर लेता है तब शोक रहित होता है ॥२॥

समाने एकस्मिन्। वृक्षे वृक्षत्वेन रूपिते शरीरे।

निमग्नो देहे तादात्म्यभावमुपगतः स्थूलोहं कृशोऽह मित्यादिबुद्धिविशिष्टः । पुरुषः पुरि शरीरे शेते इति पुरुषो भोक्ता जीवः । अनीशया न ईष्टे इत्यनीशा माया तया मुह्यमानः स्वस्वरूपे देवत्त्वमनुष्यत्वादि बुद्धिमुपगतोऽविवेकीतियावत् । शोचति सन्तापमेति । मम पुत्रो विनष्टो भार्या मे विकला, धनं मेऽपहृतं लुण्टाकेन, किमिदानीं कुर्यामित्येवं नानाप्रकारां चिन्तामापद्यत इतिभावः । यदाऽनेकजन्मोपार्जितपुण्य परिपाकवशात् परमकारुणिकस्य कस्याप्याचार्यस्य सम्पर्कमेति तदुपदेशतश्च सर्वनियामकत्वसर्वशेषित्वान वधिकातिशयकल्याणगुणगणाकरत्वकरुणामहोद-धित्वादिधर्मैः स्वविलक्षणं चिदचिच्छरीरकमन्यं जीवा प्रेक्षयाऽत्यन्तभिन्नमीशं परमात्मानं जुष्टं स्वकर्मभिः प्रसन्नतां गतमाचार्योपदिष्टेन प्रणवो धनुरित्युपायेन सेवितं वा । जुषीप्रीतिसेवनयोरितिधातुः । ईशं पर मात्मानमस्य परमेश्वरस्य महिमानं माहात्म्यं 'यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्यैष महिमा भुवी'तिश्रुतिप्रोक्तं सर्वप्रपञ्च ज्ञातृत्वसर्वान्तर्यामित्वादिकञ्च पश्यति साक्षात्करोति । इति एतस्मात् कारणात् परमात्मनः तदीयमहिम्नश्च सा क्षात्काररूपाद् वीतशोको भवति पूर्वोक्तचिन्ताभिः पुत्रभार्यादिवैकल्यप्रयुक्ताभिर्विमुक्तो भवति । सर्वबन्ध

विनिर्मुक्तो भवतीतिभावः ॥२॥

'समाने वृक्षे' इत्यादि । समान अर्थात् एक शरीररूप वृक्ष में निमग्न अर्थात् कलेवर में तादात्म्यभाव को प्राप्त किया हुआ स्थूल मैं हूँ, कृश मैं हूँ, एतादृश बुद्धि विशिष्ट पुरुष भोक्ता जीव अनीशा माया से मुग्धा अर्थात् स्व स्वरूप में देवत्व मनुष्यत्वादि बुद्धि को प्राप्त किया हुआ अविवेकी शोक संताप को प्राप्त करता है । अर्थात् मेरा पुत्र नष्ट हो गया, मेरी पत्नी विकल है, चोरों ने मेरा धन लूट लिया, अब मैं क्या करुँ ? इत्यादि रूपसे अनेक प्रकारक चिन्ता को प्राप्त करता है । जब वह अनेक जन्म से उपार्जित पुण्य कर्म के बल से परम कारुणिक किसी आचार्य के संपर्क को प्राप्त करता है और तादृश गुरु के उपदेश से सर्वनियामक सर्वशेषी अनवधिक निरतिशय कल्याण गुणों का आकर करुणा महोदधि स्वविलक्षण चिदचित् शरीरक स्वभिन्न अर्थात् जीवापेक्षया अत्यन्त भिन्न ईश परमात्मा को स्वकर्म द्वारा प्रसन्नता प्राप्त आचार्य से उपदिष्ट **'प्रणवो धनुः'** इत्यादि उपाय से सेवित परमात्मा को इस परमपुरुष परमात्मा के महिमा माहात्म्य जो कि **'सः सर्वज्ञः'** इत्यादि श्रुति प्रोक्त सर्वप्रपञ्च ज्ञातृत्व अन्तर्यामित्वादिक गुणगण विशिष्ट साक्षात्कार करता है । इसी कारण से अर्थात् परमात्मा

तथा तदीय महिमा का साक्षात्कार हेतु से वीतशोक हो जाता है। अर्थात् पुत्र कलत्रादि वैकल्य प्रयुक्त पूर्वोक्त चिन्ता से विमुक्त हो जाता है यानी सर्वबन्धन से रहित हो जाता है ॥२॥

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् । तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ॥३॥

जब साधक जीवात्मा सुवर्ण के समान वर्ण वाले सव संसार के कर्ता सभी के शासक सृष्टि कर्ता ब्रह्माजी के भी कारण परपुरुष श्रीरामजी को प्रत्यक्ष रूपसे देख लेता है उसी समय में साधक विद्वान् जीवात्मा पुण्य एवं पाप को ठीक से दूरकर प्रकृति संसर्ग से रहित होकर अपहतपाप्मत्व प्रभृति आठ गुणों द्वारा परमेश्वर के साथ परम समानता को प्राप्त करलेता है ॥३॥

पूर्वं वीतशोको भवतीत्युक्तम् । मुक्तिदशायां जीव स्वरूपं कीदृशं भवतीति शंका तिष्ठत्येव तां निरा करोति-यदा यस्मिन् काले पश्यतीति पश्यो द्रष्टा जीवो रुक्मवर्णं रुक्मस्य सुवर्णस्येव वर्णो दीप्तिः सदैकरूपा यस्य तं तथा एषोऽन्तरादित्ये हिरण्यश्मश्रु हिरण्यकेश आप्रणखात्सर्वसुवर्णः इत्यादि श्रुतिप्रतिपा दितदेदीप्यमानविग्रहविशिष्टम् । कर्तारं निमित्तकार णम् । योनिमुपादानभूतं विश्वस्य । ईशम् ईष्ट इति ईट्

तम् सर्वनियन्तारं पुरुषं निरुपाधिकपुरुषशब्दवाच्यं परमात्मानम् । ब्रह्म स्वरूपतो गुणतश्च सर्वतो बृहत्वाद् ब्रह्मस्वरूपम् । पश्यति साक्षात्कुरुते गुरूपदिष्टमार्गेण तदा साक्षात्कारानन्तरम् । विद्वान् ब्रह्मस्वरूपज्ञानवान् स उपासकः । पुण्यपापे शुभाशुभकर्मणी जन्मपरम्परासञ्चिते विधूय अश्व इव रोमाणि कम्पयित्वा दूरीकृत्य पूर्वोत्तराघविश्लेषाऽश्लेषविशिष्टो भूत्वा निरञ्जनो निर्गतसमूलवासनालेपः सन् । परमंसाम्यमपहत-पाप्मत्वसत्यकामत्व सत्यसंकल्पत्वादिगुणाविर्भावात् परमात्मना सह साम्यविशेषम् । उपैति प्राप्नोति । एतेन साम्यलक्षणैव मुक्तिरौपनिषदीति स्पष्टीकृतं भवति । ब्रह्मयोनिमित्यत्र समस्तपदपक्षे तु ब्रह्मणोऽव्याकृतस्य योनिरुपादानमित्यर्थो बोध्यः । साम्यप्रतिपादनान्मुक्तिकालेऽपि जीवब्रह्मणोर्भेदः सूचितो भवतीति ध्येयम् ॥३॥

वीतशोक हो जाता है ऐसा पहले कहा गया है परन्तु मुक्ति दशा में जीव का स्वरूप कैसा रहता है यह शंका तो नहीं गई किन्तु यह शंका तो है ही इसलिये उस शंका का निराकरण करते हैं-'**यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णमित्यादि**' यदा-जिस काल में पदार्थ को देखने वाला द्रष्टा जीव रुक्म वर्ण रुक्म नाम है सोना का

तादृश सुवर्ण के समान सदा एकरूप प्रभा दीप्ति है जिसकी एतादृश परमात्मा को। अर्थात् **'एषोन्तरादित्ये हिरण्यश्मश्रुः'** इत्यादि श्रुति प्रतिपादित देदीप्यमान विग्रह विशिष्ट परमात्मा को। तथा जगत् के कर्ता निमित्तकारण सर्वनियन्ता निरूपाधिक पुरुष शब्द वाच्य परमात्मा को ब्रह्मस्वरूप से गुण से सर्वव्यापक ब्रह्मस्वरूप को गुरूपदिष्ट मार्ग से देखता है अर्थात् साक्षात्कार करता है। तदा-साक्षात्कार करने के वाद विद्वान् ब्रह्मस्वरूप ज्ञानवान् वह उपासक पुण्य पापे-शुभाशुभ कर्म का जो कि अनेक भव परम्परा से सञ्चित है उसका विधूनन-अश्व के समान रोम को कम्पित करके अर्थात् निराकरण दूर करके पूर्वोत्तर अघ का विश्लेष तथा अश्लेष करके निरञ्जन निर्गत अशेष वासना से निर्लेप हो करके परम समता अपहतपाप्मत्व सत्यसंकल्पत्वादि गुण के आविर्भाव होने से परमात्मा के साथ परम समता को प्राप्त करता है। इससे समता लक्षण मोक्ष ही उपनिषत् सम्बन्धी है वह स्पष्ट किया गया। **'ब्रह्मयोनिम्'** इसे समस्त पद मानें तब यह अर्थ होता है कि ब्रह्म अर्थात् अव्याकृत का योनि उपादान कारण है। समता का प्रतिपादन करने से मोक्ष काल में भी जीव ब्रह्म का भेद सूचित होता है नतु सर्वथा जीव ब्रह्म में अभेद है

क्योंकि समानता चन्द्रमुख के समान भेद घटित है। सर्वथा तादात्म्यपक्ष में समता असंभवित है। घट घट के समान है यह प्रतीति नहीं होती है और पर्वत वह्निमत्वरूप से महानस सदृश है ऐसा प्रत्यय होता है। मोक्षकाल में जीव ब्रह्म के समान होता है न तु जीव ब्रह्म तादात्म्यापन्न होता है अतः इस अंश में श्रीबोधायन महर्षि के अनुयायी श्रौतविशिष्टाद्वैत मताबलम्बी श्रीरामानन्दीय श्रीसम्प्रदाय ही युक्तियुक्त सिद्ध होता है। इसका विशेष विवरण **'तत्त्वमसि अहं ब्रह्मास्मि'** इत्यादि स्थल के आनन्दभाष्य विवेचना में देखें ॥३॥

प्राणो ह्येष यः सर्वभूतैर्विभाति विजानन् विद्वान् भवते नातिवादी । आत्मक्रीड आत्म रतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः ॥४॥

जो यह परमेश्वर सभी भूतों द्वारा प्रकाशित होता है यही सर्वेश्वर श्रीराम प्राण है सत् उपदेशों द्वारा उसको जानकर सर्वेश्वर की आराधना करने वाले तुम उस सर्वेश्वर श्रीरामजी के अनुग्रह से सभी को अभिभूत कर सत् प्रवचन वाले हो जाओ। आत्मा में क्रीडा करने वाले तथा आत्मस्वरूप में ही प्रेम करनेवाले और सत् क्रिया वाले हो जाओ ऐसी क्रियाशील साधक ही ब्रह्म ज्ञानियों में श्रेष्ठ होता है ॥४॥

प्राणः परमात्मा स हि मुख्यप्राणस्यापि प्राणो जीवनसाधनम् । श्रुतिश्च भवति 'प्राणस्य प्राण' इति ।

अन्येषामपि जीवनसाधनं मुख्यतया स एव 'सर्वाणि ह वा भूतानि प्राणादेवाभ्युज्जिहन्ति' इतिश्रुतेस्तस्मात् परमात्मैवात्र प्राणो ग्राह्यः । एषः सर्वान्तरात्माऽक्षरपुरुषः । यः सर्वभूतैर्विभाति कायाकारपरिणता-ब्रह्मस्तम्बेषु सर्वभूतेषु विद्यमानत्वेन तत्र जीववदनिमग्नत्वेन तैः सर्वैर्भूतैरुपलक्षितो विभाति विशेषतः प्रकाशते । उपलक्षणार्थकतृतीयाश्रुतेः । एवं भूतं सर्व भूतोपलक्षितं प्राणं विजानन् विविच्य सर्वात्मभूततया जानन् श्रवणमननद्वारा तदीयज्ञानवान् पुरुषो निदिध्यासनद्वारा विद्वान् तदीयसाक्षात्काररूपज्ञानवान् भवते भवति । य एवं सर्वात्मभूतप्राणसाक्षात्कारकर्ता पुरुषः सोऽअतिवादी न भवति । अतीत्यान्यथासन्तमर्थमन्यथा कृत्वा वदति सोऽतिवादीत्युच्यते । सर्वात्मभूतपुरुष-ज्ञानविधुरः शरीरं तदतिरिक्तकर्तृभोक्तृरूपमेव वात्मानं मन्यमानः 'ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान् सुखी । कोऽन्योस्ति सदृशो मयेत्याद्यनुसारेण सर्वानतीत्य वदति स्वात्मानमेव विद्वांस्तु परमेश्वरेणा-धिष्ठितान् सर्वान् जानन् स्वस्मिन् स्वातन्त्र्यभ्रमरहितः परमात्मायत्ततानुभववान् कथमतिवदेत् तस्माद् विद्वान् नातिवादी भवतीतिभावः । यद्वा विद्वान् भव तेनाति वादी इत्यत्र एवं भूतं परमपुरुषं विद्वान् तेन परम

पुरुषेण निमित्तेन अतिवादी भवेत्येवं योजना कार्या । तेनेत्यत्र हेत्वर्थे तृतीया । भवेति लोटो मध्यमः पुरुषः । अतीत्य सर्वान् परमात्मव्यतिरिक्तान् अतिक्रम्य वदति यः सोऽतिवादीत्यर्थः । सर्वातिशायित्वं पर मात्मनो वदतीतिभावः । स एव सर्वोत्कृष्टः परम प्राप्यश्चेत्यतिवदने हेतुताऽस्य सिद्धा भवति । 'एष तु अतिवदति यः सत्येनातिवदति' इति छान्दोग्यश्रुतिश्चा स्मिन्नर्थेऽनुकूला भवति । अयं परमपुरुषात्मकतां सर्वत्रानुभवन् आत्मक्रीड आत्मनि क्रीडा यस्य तादृश आत्मा हि सर्वस्य परमपुरुष एव प्राणशब्दोदितस्तत्रैव क्रीडते न बाह्येषूद्यानादिषु पुत्रदारादिषु च तथा आत्मरतिरात्मन्येव रतिर्यस्य तादृशो भवति । अथ विद्वान् बाह्येषु स्त्रक्चन्दनादिषु न रमते किन्तु पर मात्मन्येव रमते । यद्यपि क्रीडा रतिश्चेत्युभयमपि प्रीति रूपतया एकमेव वस्तु तथापि साधनभेदाद् भेदेन कथितम् । एष एवं विद्वानेव क्रियावान् फलानुसन्धान राहित्येन क्रियानुष्ठानकर्तृत्वात् । अविद्वांस्तु वैराग्या दिविहीनतया अर्थकामपरतया फलमाकांक्षमाण एव श्रौताः स्मार्त्ताश्च क्रिया अनुतिष्ठति तत्फलमप्यन्तवत्त्वा दफलमेवेति न स क्रियावानितिभावः । एष ब्रह्मविदां वरिष्ठो य एवं विद्वान् आत्मरतिश्च भवति । एष एव

ब्रह्मविदां ब्रह्मज्ञानिनां मध्ये वरिष्ठः सर्वतः श्रेष्ठोऽस्ति । श्रवणमननाभ्यामपि भवत्येव ब्रह्मवित्वं परन्तु न तद् वरिष्ठताप्रयोजकम् । सर्वात्मभूतप्राणशब्दोदितपरम पुरुषसाक्षात्कारशाली तु वरिष्ठताप्रयोजकस्तादृश-विद्वत्त्वात्मक्रीडत्वात्मरतित्वधर्माश्रयत्वाद् वरिष्ठभ-वर्नाह इतिभावः ॥४॥

'प्राणोह्येष' इत्यादि । प्राण परमात्मा वह मुख्यप्राण का भी प्राण है अर्थात् जीवन का साधन है । इस विषय में श्रुत्यन्तर भी कहती है **'प्राणस्य प्राणः'** (प्राण मुख्य प्राण का भी परमात्मा प्राण है जीवन का साधन है ।) प्राणातिरिक्त का भी जीवन का साधन परमात्मा ही है मुख्यरूप से । 'सभी यह भूत समुदाय प्राण अर्थात् परमात्मा से ही आविर्भूत होते हैं' ऐसा श्रुति कहती है । इसलिये इस प्रकरण में प्राण पदवाच्य परमात्मा ही हैं । यह सबके अन्तरात्मा अक्षर पुरुष जो कि सर्वभूतों से विशेषतः प्रकाशित होते हैं अर्थात् शरीराकार परिणत आब्रह्मस्तम्भ सर्वभूतों में विद्यमान होने से उस शरीर में जीव के समान निमग्न होने से सर्वभूतों से उपलक्षित होते हुए विशेष रूपसे प्रकाशित होते हैं । **'सर्वभूतैः'** यहां उपलक्षण अर्थ में तृतीया विभक्ति है । एतादृश सर्वभूतोपलक्षित प्राण पद वाच्य परमात्मा को जानता

हुआ अर्थात् विवेकपूर्वक सर्वभूतों का आत्मरूप से जानता हुआ अर्थात् श्रवण मनन द्वारा तदीय ज्ञानवान् पुरुष निदिध्यासन द्वारा तदीय साक्षात्काररूप ज्ञानवान् होता है। जो उपासक इसप्रकार सर्वात्मलक्षण प्राण का साक्षात्कार करने वाला पुरुष है वह अतिवादी नहीं होता है जो अन्यविध पदार्थ का अन्यथा रूप बना करके बोलता है वह अतिवादी कहलाता है। सबका आत्म स्वरूप परमपुरुष ज्ञानरहित जो पुरुष है वह शरीर को तथा कर्ता भोक्तारूप ही आत्मा को जानता हुआ, मैं सर्वाधिक ऐश्वर्यशाली हूँ, मैं ही भोग करनेवाला हूँ, मैं सिद्ध हूँ, बलवान् हूँ, सुखी हूँ, मेरे सदृश और कौन होगा। इत्यादि प्रकार से सभी को अतिक्रमण कर स्वकीय आत्मा को ही बोलता है। और जो विद्वान् है वह तो परमेश्वर से अधिष्ठित सबको जानता हुआ स्व में स्वातन्त्र्य भ्रम रहित होकर सब परमात्मा के अधीन हैं इत्याकारक अनुभववान् है वह किस तरह अतिवादी हो सकता है इसलिये विद्वान् अतिवादी नहीं होता है। यद्वा-'**विद्वान् भवते नातिवादी**' यहां पूर्वोक्त परमपुरुष को जाननेवाला तादृश परमपुरुष निमित्त से अतिवादी नहीं होता है। '**अतीत्य**' परमात्म व्यतिरिक्त सबको अतिक्रम करके जो बोलता है वह अतिवादी कहलाता

है। अर्थात् सर्वातिशायित्व परमात्मा में कहता है। वही परमात्मा सर्वोत्कृष्ट है तथा परमप्राप्य है इससे अतिवदन में परमेश्वर को हेतुत्व सिद्ध होता है। **'एष तु अति वदति यः सत्येनातिवदति'** यह छान्दोग्य श्रुति भी प्रकृतार्थ में अनुकूल होती है। यह उपासक परम पुरुषात्मता का सर्वत्र अनुभव करता हुआ आत्म क्रीड होता है अर्थात् आत्मा ही में क्रीडा है जिसे तादृश होता है परमपुरुष ही सबकी आत्मा है जो कि प्राण शब्द से कहें जाते हैं उसी में वह क्रीडा करता है नतु बाह्य उद्यानादिक में क्रीडा करता है। न वा पुत्र कलत्रादिक में क्रीडा करता है। तथा प्रकृत उपासक आत्मरति होता है आत्मा में ही रति होती है जिसे तादृश होता है अर्थात् विद्वान् बाह्य स्रक् चन्दन बनितादिक में रति नहीं करता है किन्तु परमात्मा में ही रमण करता है। यद्यपि क्रीडा तथा रति ये दोनों प्रीतिरूप होने से एक ही वस्तु है तथापि साधन के भेद से क्रीडा रति के भेद से कथन किया गया है। एतादृश परमात्म ज्ञानवान् उपासक ही क्रियावान् है अर्थात् फलानुसंधान रहित हो करके क्रिया का अनुष्ठान कर्ता है। अविद्वान् तो वैराग्यादि साधन से रहित होने के कारण से अर्थ काम परायण होने से फल की आकांक्षा से श्रौत तथा स्मार्त क्रिया का अनुष्ठान

करता है तादृश क्रिया का फल अन्तवान् ही प्राप्त होता है इसलिये वह फल फल नहीं है अतः वह क्रियावान् नहीं है । यही उपासक ब्रह्मज्ञानी सर्वापेक्षया श्रेष्ठ है । यद्यपि श्रवण मनन द्वारा भी ब्रह्मवित्व होता है तथापि वह वरिष्ठता का प्रयोजक नहीं है किन्तु सर्वात्मभूत प्राण शब्द प्रतिपादित परमपुरुष का साक्षात्कारवान् उपासक वरिष्ठता का प्रयोजक पूर्वोक्त ब्रह्मवित्व आत्म क्रीडत्व आत्म रतित्वादिक धर्म का आश्रय होने से वरिष्ठ होने के योग्य होता है ॥४॥

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् । अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ॥५॥

राग द्वेष प्रभृति से रहित इन्द्रिय जयी साधक जिस परमेश्वर को देखते हैं वह शुभ्र ज्ञानमय ईश्वर शरीर के अन्दर ही स्थित है यह परमेश्वर सत्य-सदाचरण तथा तपश्चर्या और यथार्थज्ञान एवं ब्रह्मचर्य के द्वारा सदा प्राप्त होता है ॥५॥

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रमिति प्रधानोपायः प्रदर्शितः पूर्वमक्षरब्रह्मसाक्षात्कारे सम्प्रति तत्सहकारिभूतान् हेतून् निर्दिशति-सत्येनेति । एष प्रस्तुत आत्मा अक्षरत्वेन कथितः सत्येनानृतवचनपरित्या

गात्मना प्राणिहितानुबन्धियथादृष्टार्थवदनरूपेण वा लभ्यः प्राप्तव्यः । प्राप्तिश्च एतन्मन्त्रोक्तसहकारिसहकृत प्रणालम्बनोपासनद्वारेति ध्येयम् । तपसा बाह्या-भ्यन्तरकरणैकाग्रतालक्षणेन लभ्यः । 'मनसश्चेन्द्रियाणां च ह्यैकाग्र्यं परमं तपः' इति स्मृतेः । सम्यग्ज्ञानेन गुरूपदेशद्वारा उपनिषद्वाक्यजन्यसंदेहविपर्ययादिरहितेन परमात्मविषयकज्ञानेन । नित्यं सर्वदा । इदञ्च मध्यमणिन्यायेन देहलीदीपन्यायेन वा सत्यतपोभ्यामप्यन्वेति । ब्रह्मचर्येण अष्टविधमैथुनपरित्यागलक्षणेन च लभ्य इत्यनेनान्वयः । एषोऽअन्तः शरीरे शरीरमध्ये हृदयकमलाकाशे । ज्योतिमयः स्वप्रकाशज्ञानस्वरूपः । अत एव शुभ्रः शोकाविवेकादिमलशून्यः । हि निश्चयेन वर्तत इति शेषः । यमिमं परमात्मानम् । क्षीणः प्रणष्टः सवासनरागादिदोषसन्दोहो येषां तादृशाः । यतय इन्द्रियनियमनशीलाः । जितेन्द्रिया इत्येतत् । पश्यन्ति साक्षात्कुर्वन्ति । नित्यमित्यनेन कदाचिद् क्रियमाणैः सत्यादिभिरुपकरणैः सहकृतोऽपि मुख्योपायः प्रणवालम्बनोपासनरूपः परमपुरुषसाक्षात्कार सम्पादनाय समर्थो न भवतीति गम्यते तेन सत्यादीनां स्तुतिरवश्याचरणीयत्वाय कृता भवति ।।५।।

इसके पूर्व में 'धनुर्गृहित्वोपनिषदं महास्त्रम्'

इत्यादि प्रकरण से आत्म दर्शन का जो प्रधान उपाय है उसे कहा गया संप्रति परमात्म साक्षात्कार में सहकारी भूत हेतु को बतलाने के लिये कहते हैं **'सत्येन लभ्य'** इत्यादि । यह अक्षर शब्द से कथित प्रस्तुत परमात्मा सत्य से अनृतवदन परित्यागात्मक सत्य वचन से अथवा प्राणियों के हित साधन यथा दृष्ट अर्थ का कथनरूप सत्य वचन से लभ्य है अर्थात् प्राप्त होते हैं । भगवत् प्राप्ति इस मन्त्र में कथित सहकारी सहकृत प्रणवरूपा लम्बन उपासना के द्वारा होता है ऐसा जानना चाहिये । तथा तपस्या से बाह्य आभ्यन्तर करण के एकाग्रता रूपसे । 'मन तथा बाह्येन्द्रिय की एकाग्रता ही परम तप है' ऐसा स्मृति में कहा है । एवं सम्यग् ज्ञान से अर्थात् गुरु के उपदेश द्वारा उपनिषद् वाक्य जन्य संदेह विपर्यय रहित परमात्म ज्ञान से नित्य प्रतिदिन । नित्यम् यह पद देहलीदीप न्याय से सत्य तथा तप इन दोनों के साथ अन्वित होता है । एवं अष्टविध मैथुन परित्याग लक्षण ब्रह्मचर्य से आत्मा की प्राप्ति होती है । यह परमात्मा शरीर के अन्दर हृदयाकाश में ज्योतिर्मय स्व प्रकाश ज्ञान स्वरूप है । अत एव शुभ्र है अर्थात् शोक अविवेकादि मलरहित है । हि शब्द निश्चयार्थक है । जिस परमात्मा को क्षीण प्राण है रागादि दोष जिनका

एतादृश इन्द्रिय नियमनशील अर्थात् जितेन्द्रिय योगी लोग साक्षात्कार करते हैं । 'नित्यम्' इस कथन से कदाचित् क्रियमाण सत्यादि उपकरण से सहकृत भी प्रणवोपासन लक्षण मुख्य उपाय परमपुरुष के साक्षात्कार करने में समर्थ नहीं होता है । अतः सत्यादिक का स्तवन अवश्य कर्तव्यता के लिये किया जाता है ॥५॥

सत्यमेव जयति नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः । येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत् सत्यस्य परं निधानम् ॥६॥

संसार में सत्य ही विजयी होता है असत्य कभी भी विजय प्राप्त नहीं कर सकता है अर्चिरादि पथ के रूपसे विस्तिर्ण देवयान- उत्तरायण मार्ग सत्य से ही प्राप्त होता है पूर्णकामना वाले ऋषि-मन्त्र तत्त्व द्रष्टा लोग जिस मार्ग के द्वारा उस परब्रह्म श्रीरामजी को प्राप्त करते हैं वहां पर सत्य भाषण के परम कारण स्वरूप मूर्त-आदि कारण **'रामोद्भिर्नाभिभासते'** की प्रतिज्ञा वाले सर्वेश्वर परात्पर ब्रह्म श्रीरामजी विराजमान हैं ॥६॥

सम्प्रति सत्यमेव स्तौति-सत्यमेव जयतीति । सत्यमेव भूतहितयथार्थवदनमेव जयति जयसाधनं भवति । जयो न सत्यवचनधर्मः किन्तु सत्यवादि पुरुषधर्मः । एवमनृतस्य धर्मः पराजयो नास्ति किन्तु अनृतवादिपुरुषधर्म एव सः । अतः वक्तृनिष्ठजय

साधनतया सत्ये उपचाराज्जिधातुप्रयोगः । नानृतम सत्यभाषणं न जयति जयसाधनं न भवति किन्तु पराजयसाधनमेव भवति । विततो विस्तृतो देवयानो देवयानाख्यः शास्त्रप्रसिद्धः पन्था मार्गविशेषः 'अर्चिःशुक्ल' इत्यादिना प्रोक्तः सत्येन सत्यवचनेन भवति । सत्यवादिनैव स पन्थाः प्राप्यत इत्यर्थः । स पन्थाः कीदृश इत्यत्राह-येन देवयानाख्येन पथा । आप्तकामा आप्तो लब्धः समस्तः कामो मनोरथो यैस्तादृशाः । लब्धसकलकामतया तृष्णाविरहिता इत्यर्थः । एवंभूता ऋषयोऽतीन्द्रियपरमात्मतत्त्वसाक्षात्कारवन्त आक्रामन्ति गच्छन्ति । प्राप्नुवन्तीत्येतत् । यदाक्रामन्ति तत् किमित्यत्राह-यत्र यस्मिन् अप्राकृते देशविशेषे साकेताभिधाने सत्यस्य सत्यवदनस्य सम्बन्धि परममुत्कृष्टं निधानं मूर्तिमत् परंब्रह्म श्री सीतानाथस्वरूपेण परमप्राप्यभूतेन वर्तते तत्स्थानमाक्रामन्ति देवयानेन पथा त आप्तकामा ऋषय इति योजना ॥६॥

अब सत्य की ही स्तुति की जाती है **'सत्यमेव जयतीत्यादि'** भूतों के लिये यथार्थ वदनरूप जो सत्य है वही जय का साधन है । जय सत्य वचन का धर्म नहीं है किन्तु सत्यवादी पुरुष का धर्म है । एवं पराजय

अनृत का धर्म नहीं है किन्तु अनृतवादी पुरुष का धर्म है। अतः वक्ता में रहनेवाला जय का साधनरूप होने से सत्य में औपचारिक जी धातु का प्रयोग किया गया है। एवं अनृत असत्य का भाषण जय का साधन नहीं है किन्तु पराजय का साधन है। वितत अर्थात् विस्तृत देवयान नामक शास्त्र प्रतिपादित मार्ग विशेष है जो कि **'अर्चिःशुक्ल रहः पक्षः'** इत्यादि से कथित है वह सत्य वचन से ही होता है। अर्थात् सत्यवादी पुरुष ही देवयान मार्ग को प्राप्त करता है। वह देवयान मार्ग कैसा है ? इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं **'येनाक्रामन्ती ति'** जिस देवयान मार्ग से प्राप्त किया है समस्त काम मनोरथ जिह्नोंने अर्थात् लब्ध सकल काम होने से तृष्णा रहित जो व्यक्ति है। एतादृश ऋषि अतीन्द्रिय परमात्म तत्व को देखने वाले व्यक्ति प्राप्त करते हैं। एतादृश ऋषि देवयान मार्ग से जिसे प्राप्त करते हैं वह क्या वस्तु है ? इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं-**'यत्र तदित्यादि'** जिस अप्राकृत साकेत नामक देश विशेष में सत्य वदन के सम्बन्धी परम उत्कृष्ट निधान मूर्तिमान परंब्रह्म परम प्राप्यरूप श्रीसीतानाथ स्वरूप से विद्यमान हैं। एतादृश स्थान को देवयान मार्ग से आप्तकाम ऋषि लोग प्राप्त करते हैं ॥६॥

बृहच्च तद् दिव्यमचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति । दूरात् सुदूरे तदिहान्ति के च पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम् ।।७।।

वह परमेश्वर अपने स्वरूप तथा गुण से बडा दिव्य तथा वाणी एवं मन का अविषय और आकर्षक है तथा वह परब्रह्म सूक्ष्म तत्त्व जीव से परमसूक्ष्म रूपसे प्रकाशित होता है तथैव वह ईश्वर दूर से भी अतिदूर है एवं वह इस शरीर में होने से अति समीप में भी है क्योंकि वह सूर्य मण्डल में अवलोकन करने वाले ब्रह्मर्षियों के ही हृदय स्वरूप गुफा में विराजमान है ।।७।।

पूर्वोक्तं परमं निधानमेव विशिनष्टि-बृहदिति । तत् सत्यसाध्यं परमं निधानम् । बृहत् स्वरूपेण गुणैश्च सर्वतो महत् । अनवधिकातिशयबृहत्त्वयोगीत्यर्थः । दिवि भवं दिव्यम् । हार्दे परमाकाशे वर्तत इत्यर्थः । अप्राकृतदेशवर्तिनोऽपि व्यापकस्य परमात्मन उपास्य त्वाय नियमनाय च सर्वप्राणिहृदयाकाशे वेषविशेषेण वर्तमानताऽस्तीतिभावः । अचिन्त्यरूपमचिन्त्यमप्रतर्क्यं रूपं यस्य तादृशम् । तत्र हेतुमाह-तच्च सूक्ष्मादचेतन वर्गेषु प्रवेशयोग्यतया तदपेक्षया सूक्ष्मश्चेतनस्तस्मादपि सूक्ष्मतरम् । निरतिशयसूक्ष्मताशालीत्यर्थः । चेतने ष्वप्यस्यान्तःप्रविष्टत्वादितिभावः । एवं रूपेण विभाति विशेषेण भासते । दूराद् विप्रकृष्टाद्देशाद् । दूरतरेऽति

विप्रकृष्टे देशे प्रकृतिपरभूते परमपदे स वर्तते । तथा पश्यत्सु ब्रह्मसाक्षात्कर्तृषु । विषयसप्तमी । इह शरीरे गुहायां हृदयाकाशे निहितं सन्निहितं वर्तते । ये पश्यन्ति परमात्मतत्वं तेषां कृतेऽतिसन्निहितं ये न पश्यन्त्यज्ञानिनस्तेषां कृते त्वत्यन्तविप्रकृष्टमितिभावः ॥७॥

पूर्वमन्त्रोक्त परमनिधान के स्वरूप का विशेषण द्वारा बतलाते हैं-**'बृहच्चेत्यादि'** वह सत्य साध्य परमनिधान बृहत है अर्थात् स्वरूप तथा गुणों से परम परम महान् हैं अनधिक अतिशय बृहत्व युक्त हैं । दिव्य हैं हृदय सम्बन्धी परमाकाश में विद्यमान हैं । अर्थात् अप्राकृत देशवर्ती परमात्मा की उपासना के लिये तथा सब का नियमन करने के लिये सर्वपाणी [illegible] हृदयाकाश में वेष विशेष से वर्तमान का प्रतिपादन किया गया है । वह परमात्मा अचिन्त्यरूप हैं तर्क के अयोग्य रूपवान् हैं । इसमें कारण का कथन करते हैं-**'सूक्ष्मादित्यादि'** वह परमनिधान परमात्मा सूक्ष्म अर्थात् अचेतन वर्ग में प्रवेश योग्य होने से तदपेक्षया सूक्ष्म हैं चेतन उससे भी सूक्ष्मतर हैं अर्थात् निरतिशय सूक्ष्मता युक्त है क्योंकि चेतन के भी अन्तःप्रविष्ट होने से । एतादृश रूप से परमात्मा विशेषरूप से प्रकाशित होते हैं । तथा दूर विप्रकृष्ट देश से दूरतर अत्यन्त विप्रकृष्ट देश में जो कि

प्रकृति से परे परमपद में विद्यमान हैं । वह परमब्रह्म अन्तिक समीप प्रकृति के अन्तर्गत आदित्य मण्डल में विद्यमान हैं । तथा ब्रह्म साक्षात्कार करनेवालों में । यहाँ विषयार्थक सप्तमी विभक्ति है । इस शरीररूप गुहा हृदयाकाश में निहित सन्निहित हो करके विद्यमान हैं अर्थात् जो परमात्म तत्व को देखते हैं उनके लिये तो अत्यन्त सन्निहित है तथा जो अज्ञानी है उनके लिये परमात्मा अतिदूर हैं ॥७॥

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा । ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ॥८॥

सर्वेश्वर श्रीरामजी का इन आँखों से एवं इस वाणी से या अन्य इन्द्रियों से अथवा तपश्चर्या से या इन कर्मों से भी ग्रहण-साक्षात्कार नहीं किया जा सकता है पर प्रकृति सम्बन्धी कला रहित उस श्रीरामजी को सर्वदा ध्यान करने वाला ज्ञानस्वरूप श्रीरामजी की ही कृपा से साधक शुद्ध अन्तःकरण वाला होता है उसके वाद साधक जीव उस सर्वेश्वर श्रीरामजी का दर्शन करता है ॥८॥

परमात्मनः प्रत्यक्षसाधनमपरमपि ज्ञानप्रसादरूपमुपवर्णयति-न चक्षुषेति । स परमात्मा चक्षुषा न गृह्यते तस्य प्राकृतवस्तुविषयतया सृष्टत्वात् । वाचा वागिन्द्रियेणापि न नोच्यते तस्यापि प्राकृतवाग् विष

यत्वात् परमात्माभिधानासमर्थत्वात् । नान्यैर्देवैर्देवा इन्द्रियाणि तैरपरैरपीन्द्रियैः त्वगादिभिर्हस्तादिभिश्च नायं गृह्यते विषयीक्रियते । तपसा कायशोषणात्मकेन कृच्छ्रचान्द्रायणादिना । कर्मणा प्रसिद्धवैभवेनाश्व मेधादिना वैदिकेन स्मार्त्तेन च कर्मणा वाऽयं परमात्मा न गृह्यत इत्यन्वयः । तपः कर्म वा नास्य साक्षात्कारे साधनमित्यर्थः । ज्ञानप्रसादेन ज्ञानं परमात्मा तत एव सर्वज्ञानप्रसरात् । तस्य प्रसादः प्रसन्नता तेन परमात्मा ऽनुग्रहेणेत्यर्थः । विशुद्धसत्वो विशुद्धं रागद्वेषादिमल सम्बन्धरहितं सत्वमन्तःकरणं यस्य तादृशः । निष्कलं निर्गताः कला अवयवा यतः । निरवयवमित्येतत् । तं परमात्मानं ध्यायमानो ध्यानविषयं कुर्वाणः । ततः परमात्मानुग्रहवशाद्विशुद्धान्तःकरणः तत्साक्षात्का रयोग्यतापन्नहृदयः सन् पश्यते साक्षात्करोतितत-मित्यर्थः ॥८॥

परमात्मा के प्रत्यक्ष का साधन यह अद्वितीय ज्ञान प्रसाद लक्षण साधन को बतलाते हैं-**'न चक्षुषा गृह्यते'** इत्यादि । वह परमात्मा बाह्य चक्षुरादि इन्द्रिय से गृहीत नहीं होते हैं क्योंकि चक्षुरादिक करण का सर्जन प्राकृत पदार्थ विषयरूप से अर्थात् वह प्राकृतरूपादिमान् पदार्थ का ही ग्राहक होता है और परमात्मा तो प्राकृत पदार्थ

नहीं है। और परमात्मा वागिन्द्रिय के भी विषय नहीं होते हैं वह भी प्राकृत पदार्थ विषयक हैं परमात्मा श्रीरामजी तो अप्राकृत हैं। न वा अन्य देवों से देव शब्द से इन्द्रियों का ग्रहण होता है चक्षुरादि इन्द्रियातिरिक्त त्वगिन्द्रियादिक से गृहीत परमात्मा नहीं होते हैं। तथा कृच्छ्र चान्द्रायण प्रभृतिक काय शोषण लक्षण तप से भी परमात्मा प्राप्य नहीं होते हैं। तथा अश्वमेधादिक कर्म से भी जो वैदिक स्मार्तरूप है उससे भी परमात्मा गृहीत नहीं होते हैं। न वा तपः कर्म परमात्म साक्षात्कार में साधन है। किन्तु ज्ञानप्रसाद से ज्ञान शब्द का अर्थ है परमात्मा क्योंकि परमात्मा से ही सब ज्ञान होता है उसका जो प्रसाद अर्थात् परमात्मा के अनुग्रह से। विशुद्ध सत्व पुरुष विशुद्ध रागद्वेषादि लक्षण मल रहित सत्व अन्तःकरण है जिसका तादृश पुरुष निष्कल अवयवरहित परमात्मा का ध्यान करता हुआ उस परमात्मा का साक्षात्कार करता है। अर्थात् परमात्मा के अनुग्रह से विशुद्धान्तःकरण वाला उपासक पुरुष परमात्मा श्रीरामजी का साक्षात्कार करता है अर्थात् परमात्मा इन्द्रियादि वेद्य नहीं हैं किन्तु परमात्मा के अनुग्रह से ही प्रत्यक्ष होते हैं ॥८॥

एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन्

प्राणः पञ्चधा संविवेश । प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां यस्मिन्विशुद्धे विभवत्येष आत्मा ॥९॥

जिस आत्मा में प्राण वायु प्राण अपान व्यान समान तथा उदान इस प्रकार पांच प्रकार से संप्रविष्ट हुआ है तथा प्रजाजनो का सभी चित्त दूसरे इन्द्रियों के साथ व्याप्त है जिस पर ब्रह्म सर्वेश्वर श्रीरामजी के प्रसन्न हो जाने पर यह जीवात्मा अपहतपाप्म प्रभृति आठ गुणों से युक्त हो जाता है यह सामान्यतया दुर्ज्ञेय अणु आत्मा विशुद्ध मन से जानने योग्य है ॥९॥

विशुद्धसत्वो यमात्मानं पश्यति स एव आत्मा । परमात्मेत्यर्थः । अणुः सर्वतः सूक्ष्मोऽणोरणीयानिति श्रुतेः । चेतसा विशुद्धेन रागादिदोषसम्पर्कशून्येनेति यावत् । चेतसा मनसा वेदितव्यः साक्षात्कार्यः । कुत्र प्रदेशे वर्तमानः स चेतसा ग्राह्योऽप्राकृतदेशे सूर्य मण्डले वाऽन्यत्र वेत्याशङ्कायामाह-यस्मिन् शरीरप्रदेशे प्राणः पञ्चधा प्राणापानादिभिः पञ्चभी रूपैर्मुख्य प्राणः संविवेश प्रविष्टो वर्तते तत्रैव शरीरप्रदेशे हार्दाकाशे वर्तमानः चेतसा ग्राह्यः पूर्वोक्तसाधनद्वारा । चेतसा ग्राह्यमणुमात्मानं विशिनष्टि-यस्मिन्नात्मनि । परब्रह्मणीति यावत् । प्रजानां प्राणिनां प्राणैरितरै रिन्द्रियैः सह सर्वं समग्रमेव चित्तं मनः ओतं समर्पित मास्ते । यस्मिंश्च परमात्मनि विशुद्धे प्रसन्ने सति एषोऽहमितिबुद्ध्या गृह्यमाण आत्मा जीवात्मा विभ वति विशेषेणापहतपाप्मत्वप्रभृतिगुणविशिष्टतया भ-

वति आविर्भवति स एषोऽणुरात्मा वेदितव्यश्चेत सेत्यन्वयः । यद्वा यस्मिन् प्राण इति वाक्यस्थमपि यस्मिन्निति पदं परमात्मपरतयैव योज्यम् ॥९॥

'एषोऽणुरात्मेत्यादि' विशुद्ध अन्तःकरणवाला पुरुष जिसे देखता है वही आत्मा परमात्मा में है **'स'** वह परमात्मा अणु सूक्ष्म है इन्द्रिय के विषय होने से। वह परमात्मा रागादि सम्बन्ध रहित चित्त अर्थात् मन से साक्षात्कार करने के योग्य होते हैं। किस देश विशेष में वर्तमान वह परमात्मा मन से गृहीत होते हैं वर्तमान वह परमात्मा मन से गृहीत होते हैं क्या अप्राकृत देश में अथवा सूर्य मण्डल में गृहीत होते हैं.? इस शंका के उत्तर में कहते हैं- **'यस्मिन् प्राण'** इत्यादि। जिस शरीररूप प्रदेश में मुख्यप्राण प्राणापानादि पांच रूपसे विभक्त हो करके संप्रविष्ट रहता है उस शरीर प्रदेश के हृदयाकाश में वर्तमान परमात्मा पूर्वोक्त साधन से अन्तःकरण द्वारा गृहीत होते हैं। मनोग्राह्य अणु आत्मा को वि शेषण विशिष्ट रूपसे कथन करते हैं **'यस्मिन् विशुद्धे'** इत्यादि। जिस आत्मा परब्रह्म में प्राणियों का प्राण तथा सब इन्द्रियों के साथ समग्र अन्तःकरण समर्पित है। जिस परमात्मा के प्रसन्न होने पर यह **'अहम्'** इत्याकारक बुद्धि से गृहीत आत्मा जीवात्मा विशे षेण अपहतपाप्मत्वादि गुण विशिष्ट रूपसे आविर्भूत होता है वह यह परमात्मा चेतसा वेदितव्य हैं। यद्वा **'यस्मिन् प्राण'** इस वा क्य में जो प्राणपद है वह परमात्मपरक है ऐसे जोडना चाहिये।९।

यं यं लोकं मनसा संविभाति विशुद्ध सत्वः

कामयते याँश्च कामान् । तं तं लोकं जायते तांश्च कामांस्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद् भूतिकामः ॥१०॥

卐 इति तृतीयमुण्डके प्रथमः खण्डः ॥३-१॥ 卐

विशुद्ध अन्तःकरण वाला तत्त्वज्ञानी जिस जिस लोक को मन से संकल्पित करता है एवं जिन ऐहीक योगों का इच्छा करता है उन उन सभी लोक तथा उन इच्छित सभी कामनाओं को प्राप्त करता है अतः ऐश्वर्य प्रभृति की कामना वालों को आत्मा के जानने वाले महात्मा पुरुष की पूजा सेवा करनी चाहिये ॥१०॥

परमपुरुषसाक्षात्कारवतो महिमानं प्रदर्शयति-यं यं लोकं पितृलोकं गन्धर्वलोकमपरमपि किमपि लोकं वा मनसा चेतसा संविभाति संकल्पयति यांश्च कामान् भोगान् राज्यादीन् कामयते प्रार्थयते । चिन्तयतीत्येतत् । विशुद्धसत्वो विशुद्धान्तःकरणः क्षीणरागद्वेषादिसवासनक्लेशः परमात्मज्ञानी तं तं संकल्पितं लोकं जयते प्राप्नोति तांश्च काम्यमानान् कामान् भोगान् जयते । सत्यकामत्वादिधर्माविर्भावात् सर्वलोकसर्वकामाऽवाप्तिस्तस्य सुलभा संकल्पमात्रसाध्यत्वादिति भावः । तस्माद् यस्मादयं सत्यसंकल्पः सर्वमवाप्तुमवापयितुंञ्च शक्नोति तस्माद्धेतोर्यो भूतिमैश्वर्यं कामयत इति भूतिकाम ऐश्वर्याभिलाषी जनः । हि निश्चयेन । आत्मज्ञं परमात्मसाक्षात्कारवन्तमर्चयेत् पूजयेत् ।

अर्चया प्रसन्नोऽयं परमात्मविन्मदीयमभिलषितं साधयिष्यतीतीच्छया तत्पूजा विधेयेत्यर्थः ॥१०॥

卐 इति भगवद्रामानन्दचार्यविरचिते मुण्डतोपनिषद आनन्दभाष्ये तृतीयमुण्डकस्य प्रथमः खण्डः ॥३-१॥ 卐

जिस उपासक को परमपुरुष श्रीरामजी का साक्षात्कार हुआ है तादृश साक्षात्कारवान् उपासक का जो महत्त्व है उसे बतलाते हैं-**'यं यं लोकमित्यादि'** वह परमात्म साक्षात्का रवान् पुरुष जिस जिस लोक पितृ लोक गन्धर्वादि लोक की कामना अन्तःकरण के द्वारा करता है अर्थात् संकल्प करता है और राज्यादिक का संकल्प करता है उसे पवित्र अन्तःकरण वाला पुरुष प्राप्त करता है। सत्य कामत्वादिक धर्मों के आविर्भाव होने से सर्वकाम की प्राप्ति होती है वह प्राप्ति संकल्पमात्र साध्य है। अतः जिसलिये सत्य संकल्पवान् पुरुष सर्वपदार्थ की प्राप्ति करता है तथा अन्य को भी प्राप्त करा सकते हैं इसलिये ऐश्वर्य की अभिलाषा करनेवाले पुरुष परमपुरुष श्रीरामजी के साक्षात्का रवान् व्यक्ति की पूजा करें। अर्थात् मेरी पूजा से प्रसन्न आत्मज्ञानी मेरे अभिलषित को पूर्ण करेगा, इस इच्छा से आत्मज्ञानी की फलाक्षत पुष्पादि से पूजा करें ॥१०॥

卐 इति मुण्डकोपनिषदः श्रीरामानन्दभाष्यस्यप्रकाशे तृतीयमुण्डकस्य प्रथमः खण्डः 卐

卐 अथ तृतीयमुण्डके द्वितीयः खण्डः 卐

स वेदैतत्परमं ब्रह्म धाम यत्र विश्वं निहितं भाति-शुभ्रम् । उपासते पुरुषं ये ह्यकामास्ते शुक्रमेतदतिवर्त्तन्तिधीराः ॥१॥

जिस परमपुरुष श्रीरामजी में चर तथा अचर सारा विश्व निहित है एवं शुभ्र-शुद्ध स्वप्रकाश रूपसे प्रकाशित होता है पूर्व वर्णित धाम-सभी कामनाओं का स्थान सवसे उत्तम परब्रह्म को वह अर्थात् पूर्व वर्णित तत्त्वज्ञानी जानता है । जो बुद्धिमान् कामना से हीन साधक पुरुष यानी आत्मज्ञानी की परमात्मा के समान सेवा करते हैं वे धीर साधकजन इस शुक्र को अतिक्रमण करते हैं अर्थात् पुनर्जन्म प्राप्त नहीं करते हैं ॥१॥

सकामस्य ब्रह्मवित्पूजाफलमैश्वर्यमुक्तं सम्प्रति कामनारहितस्य ब्रह्मवित्पूजाफलं निर्दिशति-स वेदैतदिति । सः प्रकृतो विशुद्धसत्वो ब्रह्मवित् । एतद् उक्तस्वरूपं ब्रह्म । परमपुरुषमित्येतत् । परममुत्कृष्टम् । धाम सर्वकामाश्रयत्वाद् धामशब्देन कथितम् । वेद जानाति साक्षात् कुरुते । कीदृशं ब्रह्मेत्यत्राह-यत्र परब्रह्मणि निहितं समर्पितं वर्तमानमित्येतत् । विश्वं समग्रं जगत् । अस्तीति शेषः । यच्च ब्रह्म शुभ्रं भाति । यद्वा यत्र परब्रह्मणि निहितं विश्वं सकलं कल्याणगुणादिवस्तु शुभ्रं निर्दोषं भाति । एतादृशब्रह्मसा

क्षात्कारकर्तारं पुरुषमुपासकविशेषं ये धीरा बुद्धिमन्तोऽकामा ऐश्वर्यादिकामनारहिताः सन्त उपासते परिचरन्ति अपरं देवमिव परमात्मानमिव ते धीरा मुमुक्षव एतच्छरीरोपादानतया लोकप्रसिद्धं शुक्रं बीजं चरमधातुशक्तिमतिवर्त्तन्ति अतिक्रामान्ति । न कामपि योनिं गच्छन्ति । जन्ममरणशून्या भवन्तीतिभावः ॥१॥

जो कामनावान् व्यक्ति है वह जो ब्रह्मवित् का पूजन करता है उसे ऐश्वर्य प्राप्तिरूप फल की प्राप्ति होती है ऐसा कहा गया । संप्रति कामना रहित व्यक्ति जो ब्रह्मज्ञानी का पूजन करता है उस पूजक को क्या फल मिलता है वह बतलाते हैं उसका निर्देश करते हैं- **'स वेदैतदित्यादि'** वह विशुद्ध अन्तःकरण वाला ब्रह्मज्ञानी यह परमपुरुष ब्रह्म को जो कि सर्वकामाश्रय होने से धाम शब्द से प्रतिपाद्य हैं तादृश परमात्मा को जानता है अर्थात् साक्षात्कार करता है, वह ब्रह्म कैसा है? इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं **'यत्र विश्वमिति'** जिस परब्रह्म में समर्पित है वर्तमान है समस्त जगत् । तथा जो ब्रह्म शुभ्र भासित होता है । यद्वा जिस परब्रह्म में निहित विश्व सकल कल्याणगुणादिक वस्तु शुभ्र अर्थात् दोषरहित हो करके भासित होता है । एतादृश ब्रह्म साक्षात्कार करनेवाला जो उपासक पुरुष विशेष है

उनको जो धीर बुद्धिमान् व्यक्ति **अकामः** कामना रहित हो करके देवता के समान उपासना परिचर्या करते हैं। वे धीर मुमुक्षुगण इस शरीर के उपादानकारण लोक प्रसिद्ध शुक्र अर्थात् वीर्य को अतिवर्तन अर्थात् अतिक्रमण कर जाते हैं किसी भी योनि को प्राप्त नहीं करते अर्थात् जरामरण रहित हो जाते हैं ॥१॥

कामान् यः कामयते मन्यमानः स कामभिर्जायते तत्र तत्र । पर्याप्तकामस्य कृतात्मनस्तु इहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः ॥२॥

जो साधक कामों यानी देवत्व मनुष्यत्व प्रभृति भोगों को ही भोग्य हैं ऐसा मानकर उन विषयों की आकांक्षा रखता है वह कामनाकांक्षी देवत्व मनुष्यत्व प्रभृति आकांक्षाओं के कारण उन उन स्थानों या योनियों में उत्पन्न होता है पर परिपूर्ण ब्रह्म श्रीरामजी के विषय में आकांक्षा वाले कृतात्मा-तत्त्ववेत्ता साधक की सभी कामनाएं इसी जन्म में विलीन हो जाती हैं यानी इसका पुनर्जन्म नहीं होता है ॥२॥

कामनात्यागस्यैव प्रधानसाधनतां मोक्षं प्रति दर्शयतुमाह-कामानिति । यो जनः कामान् शब्दादीन् देवमनुष्यत्वादींश्च दृष्टानदृष्टांश्च विषयान् मन्यमानस्तत्तत् काम्यविषयगतगुणाभिध्यानेन कामानेव बहुमानयन् कामयतेऽभिलष्यति स जनस्तत्र तत्र योनिषु देवादिषु कामभिः कामैरेवेच्छारूपैर्निमित्तैर्जायते समुत्पद्यते ।

तत्र तत्र योनौ जन्मबीजमस्य कामनैव भवतीत्यर्थः। यस्तु पर्याप्तकामः पर्याप्तं परिपूर्णं परंब्रह्म कामयत इति पर्याप्तकामस्तस्य परब्रह्मप्राप्तीच्छावतः । यद्वा पर्याप्ताः परिपूर्णाः कामा मनोरथा यस्य तस्य पर्याप्त कामस्य सर्वकामनाविनिर्मुक्तस्य । अत एव कृतात्मनः कृतो निश्चित आत्मा परमपुरुषो येन तादृशस्य जनस्य तु इहैव अत्रैव जन्मनि यद्वा प्रकृतिमण्डल एव । सर्वे कामा मनोरथाः प्रविलीयन्ति लुप्ता भवन्ति । विनश्यन्तीत्येतत् । निवृत्ततृष्णास्य समुपतिष्ठन्तोऽपि विषयाः तदीयक्षोभजननहेतवो न भवन्ति । विषयैरक्षुभ्यमाणस्य तु जन्मबीजभूतकामनारूपकारणाभावाज्जन्म मरणप्रसंगो न भवतीतिभावः ॥२॥

कामना का सर्वात्मना जो त्याग है वही मोक्ष के प्रति प्रधान साधन है, इसे बतलाने के लिये कहते हैं– **'कामान् यः कामयते'** इत्यादि । जो व्यक्ति काम को शब्दादिक तथा मनुष्यत्व देवत्वादिक को अर्थात् दृष्टादृष्ट विषय को मानता हुआ तत्तत् काम्यपदार्थगत गुण का अभिध्यान करने से काम की ही कामना करता है तादृश कामनावान् पुरुष तत्तत् देव मनुष्यादिक योनियों में काम से अर्थात् इच्छारूप निमित्त से उन योनियों में उत्पन्न होता है । अर्थात् तत्तत् योनियों में जन्म का मुख्यकारण

कामना ही होती है । जो पर्याप्तकाम है अर्थात् पर्याप्त परिपूर्ण परब्रह्म श्रीरामजी की जो कामना करे उसे पर्याप्त काम कहते हैं अर्थात् परब्रह्म प्राप्ति विषयक इच्छावान् को । यद्वा पर्याप्त परिपूर्ण है काम मनोरथ जिसका अर्थात् सर्वकामना विनिर्मुक्त पुरुष का । अत एव जो कृतात्मा है कृत निश्चित कर लिया है आत्मा परमपुरुष को जिसने एतादृश पुरुष को यहां ही अर्थात् इस जन्म में यद्वा प्रकृति मण्डल में सभी काम मनोरथ प्रविलीय मान लुप्त विनष्ट हो जाता है । जो निवृत्त तृष्णावान् है उसके समीप में उपस्थित भी विषय उसे क्षोभ उत्पादन करने में समर्थ नहीं होते हैं । विषयों से अक्षोभ्यमाण पुरुष को जन्म का कारणीभूत कामनारूप कारण के अभाव होने से जन्म मरण की प्राप्ति नहीं होती है ॥२॥

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन । यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुंस्वाम् ॥३॥

यह आत्मा-सर्वेश्वर श्रीरामजी प्रवचन मनन से प्राप्त नहीं होते एवं मेधा-निदिध्यासन से भी प्राप्त करने योग्य नहीं हैं तथा बहुत सुनने से भी प्राप्त नहीं होते पर यह परमेश्वर श्रीरामजी जिस साधक को वरण करते हैं उस साधक से ही प्राप्त होते हैं । यह कृपालु परमात्मा उस साधक के हेतु अपने स्वरूप को प्रकाशित करते हैं ॥३॥

अयं पूर्ववर्णित आत्मा परमात्मा प्रवचनेन शास्त्र व्याख्यानरूपेण प्रवचनसाधनीभूतमननेन वा । कृत मनन एव प्रवचनं सम्यक् तया कर्तुमर्हतीति दृष्टमेतत् । न लभ्यो न साक्षात्कर्त्तुमर्हः । न मेधया मेधा शास्त्रार्थावगाहनधारणसमर्था प्रज्ञा तया प्रज्ञया शास्त्रार्थोऽवगाह्यते तदनन्तरञ्च ध्रियतेऽपि तया तन्मात्रेण न लभ्यः । यद्वा मेधाऽत्र निदिध्यासनं न निदिध्यासन मात्रेण वा लभ्यः । न बहुना श्रुतेन पुनः पुनः शास्त्र श्रवणेन, बहूना शास्त्राणां श्रवणेन वा न लभ्यः । श्रवणादिमात्रेण तत्समूहेन वा नास्य लाभः किन्तु परमपुरुषप्रसादोऽप्यपेक्षित इतिभावः । तर्हि केन लभ्य इत्यत्राह-यमेवैष वृणुते । एष परमात्मा । यमुपासकं वृणुते प्रार्थयते तेनैवोपासकेन लभ्यः । परमात्मा हि तमेवोपासकं प्रार्थयते य उपासकोऽस्यात्यन्तं प्रियो भवेत् । उपासकश्च परमात्मनोऽत्यन्तं प्रियः स एव भवति यस्य परमात्माऽत्यन्तं प्रियो भवति । द्वयोस्सुहृदोः परस्परमत्यन्तं प्रीतिमतोः परस्परप्रार्थनीयता । तेन कथं लभ्य इत्यत्राह-तस्यैष आत्मा । एष आत्मा परमात्मा तस्य वरणकर्मण उपासकस्य कृते स्वां तनुं स्वतनुं स्वस्वरूपं विवृणुते प्रकाशयति भगवता स्वस्वरूपे तस्मै प्रकाशिते स उपासको

भगवत्स्वरूपं साक्षात्कर्त्तुमर्हति यथा पार्थाय भगवता स्वीयविराट्स्वरूपे प्रकाशिते पार्थेन तत्साक्षात्कारः कृतो नान्येनेतिभावः ॥३॥

'नायमात्मेत्यादि' यह पूर्व वर्णित आत्मा अर्थात् परिपूर्ण परब्रह्म परमेश्वर श्रीसीतानाथजी शास्त्र व्याख्यान लक्षण प्रवचन से अथवा प्रवचन के साधन मनन से। जिसने मनन किया है वही व्यक्ति समीचीन रूपसे प्रवचन कर सकता है ऐसा देखने में आता है। वह परमात्मा प्रवचन से प्राप्त नहीं होते हैं अर्थात् प्रवचन से साक्षात्कार करने के योग्य नहीं हैं। नवा मेधा से शास्त्रार्थ का अवगाहन तथा धारण करने में समर्थ जो प्रज्ञा उसे मेधा कहते हैं उस प्रज्ञा से शास्त्र का अर्थ अवगाहित होता है तथा धारित होता है एतादृश प्रज्ञा से भी परमात्मा प्राप्त नहीं होते हैं। यद्वा मेधा शब्द का अर्थ है निदिध्यासन तावन्मात्र से भी परमात्मा लब्ध नहीं होते हैं। पुनः पुनः शास्त्र श्रवण अथवा अनेक शास्त्रों के श्रवण से प्राप्त नहीं होते हैं। मात्र श्रवण से अथवा श्रवण समुदाय से परमात्मा प्राप्त नहीं होते हैं किन्तु एतदतिरिक्त परमपुरुष सर्वेश्वर श्रीरामजी की प्रसन्नता भी अपेक्षित है।

यदि पूर्वोक्त प्रकार से परमात्मा का साक्षात्कार नहीं

होता है तब किस प्रकार से होता है ? इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं कि-'**यमेवैष वृणुते**' इत्यादि । यह परमात्मा जिस उपासक का वरण प्रार्थना करता है उस उपासक से ही परमात्मा लब्ध होते हैं, परमात्मा उसी उपासक को प्रार्थित करता है जो उपासक परमात्मा का अत्यन्त प्रिय होता है और वही उपासक परमप्रिय होता है जिसके लिये परमात्मा श्रीरामजी अत्यन्त प्रिय होते हैं, परस्पर अत्यन्त प्रीतिमान दोनों मित्रों में परस्पर प्रार्थनीयत्व होता है । उस उपासक से परमात्मा किस तरह प्राप्त होता है ? इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं- '**तस्यैष आत्मा**' इति । यह परमात्मा उस वरण कर्मीभूत उपासक के लिये स्वतनु स्वकीय स्वरूप को प्रकाशित करता है भगवान् जब उपासक के लिये स्व तनु का प्रकाशित करते हैं तब वह उपासक भगवत्स्वरूप का साक्षात्कार करने के योग्य होता है अर्थात् भगवान् के स्वरूप का साक्षात्कार करता है । जिस तरह अर्जुन के लिये भगवान् ने स्व स्वरूप का प्रदर्शन कराया तब अर्जुन ने उस विराट् स्वरूप का साक्षात्कार किया । तदन्य को तादृश विराट् स्वरूप का साक्षात्कार नहीं हुआ ॥३॥

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमा

दात्तपसो वाप्यलिङ्गात् । एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वांस्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम ॥४॥

यह परमात्मा श्रीरामजी उपासना शक्ति रूप बल से हीन साधक से लभ्य नहीं हैं एवं प्रमाद-असावधान मन से या लिङ्ग यानी तिलक कण्ठी शिखा सूत्र त्रिदण्ड एवं काषाय वस्त्र प्रभृति लक्षण से विहीन तप अर्थात् संन्यास से भी प्राप्त नहीं होते हैं। परन्तु जो विद्वान् ऊपर बताये सलक्षण संन्यास अप्रमाद बल प्रभृति उपायों द्वारा श्रीरामप्राप्ति हेतु यत्न करता है तो उस साधक की आत्मा प्राप्यधाम-श्रीसाकेत में स्थित परब्रह्म श्रीरामजी को प्राप्त करता है ॥४॥

सम्प्रति बलादीनां सहकारित्वमन्वयव्यतिरेकाभ्यां प्रदर्शयति-नायमात्मेति । अयमात्मा प्रस्तुतः परम-पुरुषः । बलहीनेन न लभ्यः । बलञ्च शारीरं मानसं चेत्युभयमत्रापेक्षितम् । परमात्मोपासने क्रियमाणेषु तपःस्वाध्यायाचार्यादिषु तन्निर्वर्त्तनसामर्थ्यं बलं शारीरम् । मानसं बलं धैर्यमेव । उभयोरेकतरस्य द्वयोर्वाऽभावो यस्यास्ति न तेनोपासकेन लभ्य इत्यर्थः । न च प्रमादात् प्रमादो हि मनसो ध्येये परमात्मनि समर्पितस्य ततः प्रच्युतिः । स च विषयान्तरप्रवेशेन स्तब्धीभावेन भवति तादृशप्रमादयुक्तमनसा पुंसा न लभ्यः इत्यर्थः । तपसो वाऽप्यलिङ्गात् तपः कृच्छ्र चान्द्रायणादिकं शरीरशोषजनकम् । लिङ्गं वर्णाश्रम

सूचकचिह्नविशेषः शिखासूत्रतिलकतुलसीकण्ठमालिकात्रिदण्डकाषायादिः । यत्राश्रमे गृहस्थादौ यत्र च वर्णे ब्राह्मणादौ वर्तमान उपासकः तपश्चरति तस्याश्रमस्य वर्णस्य च सूचकं लिङ्गं तेनावश्यं धारणीयम् । वर्णाश्रमाभिव्यञ्जकलिङ्गहीनेन क्रियमाणमपि तपः परमात्मलाभं न फलतीत्यर्थः । एवं व्यतिरेकमुपदर्श्यान्वयमपि दर्शयति एतैरुपायैरिति । **यस्तु विद्वान् विवेकवानेतैर्बलाऽप्रमादसलिङ्गतपोभिरुपायैरुपकरणैः सहकारिभिः सहितः सन् यतते परमात्मज्ञानाय प्रयस्यति तस्योपासकस्य आत्मा आत्मस्वरूपं ब्रह्म ब्रह्माख्यं धाम प्राप्यं विशते प्राप्नोति । यद्वा ब्रह्मणो धाम ब्रह्म धाम अप्राकृतो देशविशेषः । दिव्यं ब्रह्मपुरं साकेताख्यमिति यावत् । विशते प्रविशति तत्र प्रयाति ततश्च तं प्राप्नोतीत्यर्थः ॥४॥**

संप्रति अन्वय व्यतिरेक द्वारा बलादि की सहकारिता को बतलाने के लिये कहते हैं-**'नायमात्मा'** इत्यादि । यह प्रस्तुत परमात्मा परमपुरुष श्रीरामजी बलहीन से लब्ध नहीं होते हैं । यहां शरीर तथा मानस दोनों प्रकार का बल अपेक्षित है परमात्मा की उपासना करने में तप स्वाध्याय पूजनादिक में उसका संपादक शारीरिक बल है। मानस बल धैर्य है । इन दोनों प्रकार के बल में से

एक बल का अथवा दोनों प्रकार के बल का अभाव जिसे है तादृश उपासक से परमपुरुष प्राप्त नहीं होते हैं। प्रमाद से भी लब्ध नहीं होते हैं अर्थात् ध्येय जो परमात्मा उसमें समर्पित मन का परमात्मा से प्रच्युत हो जाने का नाम है प्रमाद, वह प्रमाद विषयान्तर में प्रवेश होने से स्तब्ध कर देता है तादृश प्रमाद युक्त मनवाला पुरुष से वह परमात्मा प्राप्त नहीं होते हैं। अलिंग तप से पर मात्मा का लाभ नहीं होता है, शरीर शोष का जनक चान्द्रायण प्रभृति को तप कहते हैं, लिंग कहते हैं वर्णाश्रम सूचक चिह्न विशेष को जैसे सिखा सूत्र यज्ञोपवीत तुलसीमाला तिलक त्रिदण्ड काषायवस्त्र कमण्डलु जल पवित्र प्रभृतिक। जिस आश्रम में गृहस्थादिक में तथा जिस वर्ण ब्राह्मणादिक में वर्तमान जो उपासक तपश्चरण करता है उस आश्रम का उस वर्ण का सूचक जो चिह्न है उसका धारण अवश्य करें यानी श्रीवैष्णव संन्यासी को श्रीसम्प्रदाय के ५ वें आचार्य ब्रह्मर्षि श्रीवशिष्ठजी एवं ९ वें आचार्य महर्षि श्रीबोधायन पुरुषोत्तमाचार्यजी प्रभृति पूर्वाचार्यों से विहित त्रिदण्ड काषाय वस्त्र प्रभृति का अपरिहार्य रूपसे ग्रहण करना चाहिये क्योंकि वर्णाश्रम बोधक चिह्न रहित व्यक्ति से क्रियमाण जो तप है वह परमात्म लाभात्मक फल का

जनक नहीं होता है। इसप्रकार से व्यतिरेक को बतला करके अन्वय को बतलाते हैं-'**एतैरूपायैरिति**' जो विद्वान् विवेकवान् बल अप्रमाद सत् लिंग तपस्या प्रभृतिक उपाय अर्थात् उपकरणरूप सहकारी से युक्त हो कर के परमात्मज्ञान के लिये प्रयत्न करता है उस उपासक की आत्मा आत्मस्वरूप ब्रह्माख्य धाम प्राप्य है उसे प्राप्त करता है। यद्वा ब्रह्म का जो धाम अप्राकृत देश विदेश दिव्य ब्रह्मपुर साकेत नामक स्थान उसे प्राप्त करता है ॥४॥

संप्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ताः कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः। ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीरा युक्तात्मानः सर्वमेवाविशन्ति ॥५॥

तत्त्व साक्षात्कृत ऋषिवर्ग इस परब्रह्म को संप्राप्त कर ईश्वर प्राप्तिरूप ज्ञान से तृप्त एवं आत्म प्राप्तिरूप ज्ञान वाले होने से विषय राग रहित तथा परमशान्त होते हैं एवं वे साधक सभी ओर तथा सर्वपदार्थगत परब्रह्म को अनुभव कर युक्तात्मा-यानी इन्द्रिय संयमनशील वाले धीर साधक ही सर्वस्वरूप सर्वेश्वर श्रीरामजी का अनुभव या साक्षात्कार करते हैं ॥५॥

ब्रह्मधाम विशातीत्युक्तं ब्रह्मधामप्रविष्टस्य स्थितिं निरूपयति-ऋषयः परमात्मदर्शिन एनं परमात्मानं। सम्प्राप्य तत्र देशेविशेषे ज्ञानतृप्ता ज्ञानेन परमात्मानुभवरूपेण तन्मात्रेणैव तृप्ता निरतिशयं सुखं प्राप्ताः।

न हि बद्धात्मान इव भोजनपानादिना बाह्येन साधनेन तृप्तास्तेषां तदपेक्षाविरहादित्यर्थः । कृतात्मानो निश्चित परमात्मस्वरूपाः । वीतरागा वीतः प्रणष्टो रागो विषयाभिलाषो येषां तादृशा अत एव प्रशान्ताः प्रकर्षेण शान्ता उपरतेन्द्रियग्रामाः ते धीरा निरतिशयसूक्ष्मबुद्धयः सर्वगं सर्वत्र व्यापकं परमात्मानं सर्वतः प्राप्य सर्व वस्तुषु उपलभ्य युक्तात्मानो युक्तः प्रणिहित आत्मा मनो यैस्तादृशाः प्रणिहितमनसः सर्वमेवाविशन्ति सर्वं वस्तु अनुभवन्ति । यत्र यत्र मनो निदधति तदेवानुभवितुं शक्ता भवन्तीत्यर्थः । परमात्मज्ञानवत्तया तत्प्रकारभूतानि सर्वाणि चिदचिद्वस्तूनि तदनुभवविषयतां सम्पद्यन्त इतिभाव ॥५॥

वह उपासक ब्रह्मधाम में प्रविष्ट होता है ऐसा पूर्वमन्त्र में कहा है । जो ब्रह्मधाम में प्रविष्ट है उनकी स्थिति का निरूपण करते हैं-**'संप्राप्यैनम्'** इत्यादि । ऋषि परमात्मदर्शी महात्मा इस परमात्मा को प्राप्त करके उस देश विशेष साकेत में ज्ञान से अर्थात् परमात्मा का अनुभवरूप ज्ञानमात्र से तृप्त निरतिशय सुख प्राप्त हो करके वे लोग बद्ध आत्मा की तरह भोजनपानादि बाह्य साधन से तृप्त नहीं होते हैं क्योंकि उनको बाह्य साधन की अपेक्षा नहीं रहती है । तथा कृतात्मा-कृत है

आत्मा-परमात्मस्वरूप का निश्चय है जिनको । वीतराग वीत विनष्ट है राग विषयाभिलाषा जिनको तादृश वे लोग । अत एव प्रशान्त उपरत है इन्द्रिय ग्राम जिनको एतादृश वे धीर निरतिशय सूक्ष्म बुद्धिमान वह उपासक, सर्वग सर्वत्र व्यापक परमात्मा को सर्वतः प्राप्त करके अर्थात् पदार्थ मात्र में उपलब्ध करके युक्तात्मा हो करके युक्त है प्रणिहित है आत्मा मन जिनका एतादृश अर्थात् प्रणिहित मनवाले महात्मागण सर्व वस्तु को प्राप्त करते हैं अर्थात् सर्व वस्तु का अनुभव करते हैं अर्थात् जिस जिस वस्तु में मन को लगाता है उन्हीं वस्तुओं के अनुभव करने में समर्थ होते हैं । परमात्म ज्ञानवान् होने से परमात्मा में प्रकारभूत सब चिदचिद्वस्तु उसके अनुभव की विषयता को प्राप्त करते हैं, ऐसा भाव है ॥५॥

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः । ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ॥६॥

वेदान्त के विशेष ज्ञान से जिन्होंने परब्रह्म तत्त्व को ठीक से अवगत किया है एवं सकाम कर्मों के त्यागस्वरूप योग द्वारा जिनका सत्व-देह या अन्तःकरण विशुद्ध हो गया है ऐसे साधक ब्रह्मलोक में निवासशील यति सरोग अन्तिम शरीर के अवसान काल में सभी तत्वों से उत्तम सर्वेश्वर श्रीरामजी की अनुकम्पा से संसार के सभी बन्धन

पूर्णतया छूट जाते हैं परिणामतः सायुज्यमुक्ति का भागी होता है ॥६॥

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्था वेदान्तानामुपनिषदां विज्ञानं तेन सुनिश्चितोऽवधारितोर्थः परमात्मरूपो यैस्तादृशाः । वेदान्तश्रवणमननिदिध्यासनैः परमात्म प्रसादसहितैः परब्रह्मरूपवेदान्तार्थसाक्षात्कारो येषां जातः तादृशा इत्यर्थः । ते के भवन्तीत्यत्राह-सन्न्यास योगात् सन्न्यासः परमात्मव्यतिरिक्तविषयककामना परित्यागस्तस्य योगात् सम्बन्धात् । शुद्धसत्वाः शुद्धं विगलितकामनाकतया रागद्वेषादिमलरहितं सत्वमन्तः करणं येषां ते । पवित्रचेतस इत्यर्थः । यतयो नियमित बाह्यान्तरकरणाः । ते ब्रह्मसाक्षात्कारवन्तः । तु तु शब्दोः ब्रह्मसाक्षात्कारविरहिणो बद्धान् व्यवच्छिनत्ति । परान्तकाले मरणसमये यः प्राकृतशरीरत्यागकालः सोऽन्तकाल इत्युच्यते । स शरीरत्यागबाहुल्यादनन्तः । तेषु पर उत्कृष्टोऽन्तकालश्चरमप्राकृतशरीरत्यागकालः तस्मिन् प्राकृतचरमशरीरत्यागकाल इत्यर्थः । परामृताः परः परमात्मा एव अमृतममृतवदुपभोग्यो येषां ता दृशाः । परब्रह्मानुभवरूपमुपभोगं कुर्वाणाः । सर्वे ब्र ह्मदर्शिनो यतयः । परिमुच्यन्ति परितो मुक्ता भवन्ति । सर्वबाधबहिर्गता भवन्तीत्यर्थः । 'स्वेन रूपेणाभिनिष्प द्यते' इति श्रुत्यनुसारमाविर्भूतापहतपाप्मत्वादिगुणाष्टक

विशिष्टा भवन्तीतिभावः । कुत्रैवं भवन्तीत्यमाह-ब्रह्मलोके ब्रह्मणः परमपुरुषस्य लोकेऽप्राकृते ब्रह्मपुरे साकेताख्य इत्यर्थः । साकेते गत्वा स्वासाधारणं स्वरूपमुपगच्छन्तीतिभावः । परामृतादिति पञ्चम्यन्तपाठे तु परमुत्कृष्टममृतममृतवदुपभोग्यम् । तच्च परं ब्रह्मैव तस्मात् परामृतात् परब्रह्मणो निमित्तभूतात् परि-मुच्यन्तीतियोज्यम् । मुक्तौ परमात्मन एव मुख्योपायतायाः प्रतिपादितत्वात् ॥६॥

'**वेदान्तविज्ञानेत्यादि**' वेदान्त उपनिषत् उससे जायमान जो ज्ञान उससे निश्चित अवधारित है परमात्म स्वरूप अर्थ जिनको एतादृश । अर्थात् वेदान्त श्रवण मनन निदिध्यासन से जो कि परमपुरुष के प्रमाद से युक्त है उसके द्वारा परमपुरुष रूप वेदान्तार्थ का साक्षात्कार हो गया है जिनको उसको वेदान्त विज्ञान सुनिश्चितार्थक कहते हैं । कौन व्यक्ति एतादृश है ? इस जिज्ञासा में कहते हैं-'**संन्यासयोगादिति**' परमात्म व्यतिरिक्त वस्तु विषयक कामना परित्याग को कहते हैं संन्यास तादृश संन्यास योग से विशुद्ध है अन्तःकरण जिनका वे पवित्र चित्तवाले । तथा जो मति नियमित बाह्याभ्यन्तर करण वाले हैं अर्थात् ब्रह्म साक्षात्कारवान् । वे लोग मरण समय में परान्तकाल में अर्थात् प्राकृत

शरीर के परित्याग काल में **परामृता** इति । पर परम पुरुष ही अमृत के समान उपभोग्य है जिनके तादृश वे महापुरुष अर्थात् परम ब्रह्म का अनुभवरूप भोग करनेवाले । सभी ब्रह्मदर्शी यति लोग विमुक्त हो जाते हैं सर्व बाधरहित हो जाते हैं । भाव यह है कि **'स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्य ते'** इत्यादि श्रुत्यनुसार आविर्भूत अपहतपाप्मत्वादिक जो गुणाष्टक हैं तद् विशिष्ट हो जाते हैं । कहाँ ऐसा होता है तत्राह-**'ब्रह्मलोके'** इति ब्रह्म परमपुरुष का लोक अप्राकृत ब्रह्मपुर साकेत में । अर्थात् साकेत में जा करके स्वकीय असाधारण रूप को प्राप्त करता है । **'परामृ तात्'** ऐसा पञ्चम्यन्त पाठ में यह अर्थ करना चाहिये परम अति उत्कृष्ट अमृत की तरह उपभोग्य, वह परम ब्रह्म ही है, उस परामृत परम ब्रह्मरूप निमित्त से परिमुक्त हो जाता है । क्योंकि मोक्ष में सर्वतः श्रेष्ठ उपाय परमात्मा ही हैं ऐसा शास्त्र में प्रतिपादन किया गया है ॥६॥

गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु । कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति ॥७॥

शरीर का प्रारम्भ करनेवाले पन्द्रह कलाएं स्व स्व कारण में मिल जाती हैं एवं सभी इन्द्रियां अपने अपने कारणभूत देवों में मिल जाती हैं

तथा फल शेष सभी कर्म और विज्ञानमय जीवात्मा ये सब सर्वोत्कृष्ट अव्ययरूप ब्रह्म श्रीरामजी में एकाकारता को प्राप्त करते हैं ॥७॥

'कलाः प्राणश्रद्धादिनामान्तां "सप्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धामि" त्यादिश्रुतिप्रोक्ताः । पञ्चदश पञ्चदशत्व संख्याकाः । प्रतिष्ठाः स्वस्वोपादानभूतानि तत्त्वानि गता भवन्ति मुक्तिसमये । याभिः कलाभि शरीरमारब्धं जीवस्य तासु कर्मात्मिकामेकां कलां भुक्त्वा इतरा पञ्चदश मुच्यमानजीवसम्बन्धिन्यः कलाः स्वोपादानेषु संसर्गविशेषं गच्छन्ति । लीना भवन्तीति यावत् । प्रतिष्ठा इति द्वितीयाबहुवचनान्तं पदम् । देवाश्च सर्वे देहाश्रय चक्षुरादिकरणस्थानस्थिताश्चक्षुराद्यधिष्ठातार आदित्यादयः सर्वे देवाः । प्रतिदेवतासु प्रतिनियतासु देवतासु आदित्यादिषु देवेषु गता भवन्ति । चक्षुरादिगोलकं परित्यज्य स्वीये देवस्वरूपे गच्छन्ति । अधिष्ठानक्रियां न कुर्वन्तीत्येतत् । यद्वा देवा वागादीनीन्द्रियाणि प्रतिदेवतासु बाह्यादिष्वधिष्ठातृषु देवेषु गता भवन्ति 'यत्रास्य पुरुषस्य मृतस्याग्निं वागप्येति वातं प्राणश्चक्षुरादित्यमि'त्यादिश्रुतेः । कर्माणि षोडशकलासु अन्यतमकलारूपाणि सञ्चितान्यदत्तफलानि प्रारब्धव्यतिरिक्तानि प्रारब्धकर्मणां भोगद्वारैव क्षयात् । विज्ञानमय आत्मा च विज्ञानप्रचुरो जीवात्मा चेति सर्वे परेऽव्यये सर्वतः

परभूते भूतयोनावक्षरेऽविनाशिनि परमात्मनि एकी भवन्ति अविभक्ततां गच्छन्ति संसर्गविशेषद्वारा । सचा विभागो द्वेधा लयाद्भेदकाकारपरित्यागाच्च । प्रथमः कर्मणां भगवतो धर्मभूतज्ञाने लयादेव भवति । द्वितीयस्तु जीवात्मनो देवमनुष्यादिनाम्नः तादृशरूपस्य च परित्यागाद् भवति । मुक्तिदशायां देवादिनाम रूपस्याभावात् ॥७॥

'गताः कलाः' इत्यादि । प्राण श्रद्धादि से लेकर नामान्त कला समुदाय **'सप्राणमसृजत्'** (उस परमात्मा ने प्राण का सर्जन किया) इस श्रुति में कथित पंचदश संख्या विशिष्ट ये सब कला मुक्ति समय में अपने अपने मूल तत्व में लीयमान हो जाती हैं । जिन कलाओं के द्वारा जीव का यह शरीर समुत्पन्न होता है उनमें से कर्म लक्षण एक कला को छोड करके मुच्यमान जीव सम्बन्धी इतर पंद्रह कलायें स्वकीय उपादान में लीना हो जाती हैं । **'प्रतिष्ठा'** यहाँ द्विती या का बहुवचन है । सब देव अर्थात् देहाश्रित चक्षुरादिकरण स्थान स्थित चक्षुरादि के अधिष्ठाता आदित्यादिक सभी देवतागण । प्रतिदेवता में प्रति नियत देवता में आदित्यादिक देवगण लीन हो जाते हैं अर्थात् चक्षुरादिक गोलक स्थान को छोड करके स्वकीय देवरूप को प्राप्त कर जाते हैं । अधिष्ठान के कार्य को नहीं करते हैं । यद्वा देव वागादिक इन्द्रिय

समुदाय प्रतिदेवता में बाह्य अधिष्ठातृ देवों में लीन हो जाते हैं। कर्म अर्थात् सोलह कलाओं में से अन्यतम कर्मात्मक कला जो संचित अदत्त फलक प्रारब्ध कर्म व्यतिरिक्त है क्योंकि प्रारब्धं कर्म का लय भोग द्वारा ही होता है। विज्ञान मय आत्मा अर्थात् विज्ञान प्रचुर जीवात्मा ये सब के सब पर अव्यय भूतयोनि अविनाशी परमात्मा में एकीभूत संसर्ग द्वारा अविभाग को प्राप्त कर जाते हैं। यह अविभाग दो प्रकार से होता है। लय तथा भेदाकार के परित्याग से होता है। उसमें कर्म का लय होता है भगवान् के धर्मभूत ज्ञान में लय होने से। और जीवात्मा का जो देवमनुष्यादिक नाम है तथा तादृश जो रूप है उसके परित्याग से द्वितीय लय होता है क्योंकि मोक्षदशा में देवमनुष्यादि नामरूपों का अभाव हो जाता है ॥७॥

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं ग-च्छन्ति नामरूपे विहाय। तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥८॥

जिसप्रकार उत्पन्न जगह से प्रवाहित होती हुई नदियां अपना नाम तथा रूप को छोडकर समुद्र में अदृश्य हो जाती हैं उसीप्रकार विद्वान् नाम एवं रूप से विमुक्त होकर ब्रह्मादि देवों से पर अति उत्तम दिव्य पुरुष परब्रह्म श्रीरामजी को प्राप्त करता है ॥८॥

एकीभवनमेव दृष्टान्तं प्रदर्श्य श्रुतिर्विवृणोति–यथा नद्य इति। नद्यो गंगायमुनादिकाः स्यन्दमानाः

प्रस्रवन्त्य उच्चप्रदेशादुत्पत्तिस्थानाद् हिमवदादिगिरिभ्य इत्येतत् । अधःप्रदेशं यान्त्यः समुद्रे महोदधौ गत्वा नामरूपे स्वीयं गङ्गादिकं नाम स्वीयं शुक्लकृष्णादिकं रूपञ्च विहाय परित्यज्य अस्तं गच्छन्ति पृथग् भूत तया दर्शनं न यान्ति अतः समुद्रे एकीभूता इति व्यवह्रियन्ते तथैव विद्वान् परमात्मसाक्षात्कारवान् नाम रूपाद्विमुक्तो मनुष्यदेवादिकं चैत्रमैत्रादिकं वा स्वीयं नाम मनुष्यदेवाद्याकारात्मकं रूपञ्च नामरूपशब्दयोः समाहारो द्वन्द्वे नामरूपं तस्मात् नामरूपाभ्यामित्यर्थः । विमुक्तोरहितः सन् परात्परम् 'अक्षरात् परतः पर' इति श्रुत्युक्तं दिव्यं पुरुषं परमात्मानमुपैति प्राप्नोति । अयंभावः पर्वतनिसृता जलप्रवाहा एव गङ्गादिकं नाम विभ्रति शुक्लनीलादिकं रूपं च विभ्रति । समुद्रसङ्गमकाले पूर्वोक्तं नामरूपञ्च परित्यज्यन्ति तेन गङ्गायमुनादिनामभिः शुक्लनीलादिरूपैश्च व्यवहरणीया ते न भवन्ति अतः समुद्रे एकीभूता इति व्यवहारो भवति नतु गङ्गादिप्रवाहजलस्य सामुद्रजलस्याभेदरूपैकता भवति योगिभिः सूक्ष्मदर्शिभिः तयोर्भेदस्य दृश्यत्वात् तथैव विदुषः चैत्रादिनामत्यागो भवति मनुष्यादिरूपपरित्यागश्च भवति मुक्तिसमये अतो भेदकाभावात् परमात्मगुणसदृशापहतपाप्मत्वादी

नां जीवगुणानां स्वाभाविकानामाविर्भावाच्च जीवः परमात्मना एकीभूत इति व्यवह्रियतां नाम न तथापि तयोरभेदरूप एकीभावस्तत्र भवति । तयोर्भेदस्य मुक्तानां परस्परभेदस्य च तैरेव मुक्तैः सूक्ष्मदर्शिभि र्दृश्यमानत्वात्, अत एकीभवतीत्यस्य पृथक् प्रति पत्तियोग्यता तदानीं न तिष्ठति मुक्तिप्राक्काले इवेत्यर्थः । एतेन जीवो ब्रह्माभिन्नो भवति इत्यर्थकल्पनंमायिनां दृष्टान्ताननुगुणमेवेति न युक्तमिति बोध्यम् ॥८॥

एकी भवन को दृष्टान्त द्वारा श्रुति बतलाती है- **'यथा नद्यः स्यन्दमानाः'** इत्यादि । जिस तरह गङ्गायमुनादिक नदियां झरती हुई उच्च प्रदेश उत्पत्ति स्थान अर्थात् हिमाचलादि पर्वतों से नीचे की तरफ को जाती हुई समुद्र- महोदधि में जाकर के स्वकीय गङ्गादिक नाम तथा शुक्ल कृष्णादिकरूप को छोड करके अस्तमित हो जाती हैं पृथक् रूप से दृष्टिगोचर नहीं होती हैं अतः समुद्र में एकीभूत हो गई ऐसा व्यवहार होता है उसी तरह परमात्म साक्षात्कारवान् विद्वान् नामरूप से विमुक्त होकर अर्थात् मनुष्य देवादि वा चैत्र मैत्रादिक नाम को तथा मनुष्यदेवादिक रूप को । नाम तथा रूप शब्द का समाहार द्वन्द्व करके नामरूपम् ऐसा कहा है । इन नामरूपों से विमुक्त परित्यक्त हो करके **'अक्षरात्पदतः**

परः' एतत् श्रुति प्रतिपादित परात्पर पुरुष परमात्मा श्रीरामजी को प्राप्त करता है। यहाँ कहने का भाव यह है कि पर्वत से निकला हुआ प्रवाह ही गंगादि नाम तथा शुक्लादिक रूप को धारण करता है किन्तु समुद्र के संगम काल में पूर्वोक्त नामरूप का परित्याग कर देता है अतः वह जल प्रवाह गंगा यमुनादिक नाम तथा शुक्ल नीलादि रूपसे व्यवह्रीयमाण नहीं होता है अतः समुद्र में एकीभूत हो गया ऐसा व्यवहार होता है नतु प्रवाह जल का तथा सामुद्र जल का अभेद रूप एकत्व होता है। किन्तु सूक्ष्मदर्शी योगी लोग तो तदुभय भेद को देखते हैं। इसी तरह विद्वान् के नामरूप का परित्याग होता है मोक्षकाल में। अतः भेदक का अभाव होने से परमात्म गुण के सदृश अपहतपाप्मत्वादिक जीव का स्वाभाविक गुणों का आविर्भाव होने से परमात्मा के साथ एकीभवन का व्यवहार भले हो परन्तु जीव परमेश्वर में अभेदरूप एकीभाव तो नहीं होता है। जीवेश का भेद तथा मुक्तात्माओं का जो परस्पर भेद है उसे मुक्त सूक्ष्मदर्शी लोग देखते हैं। अतः एकीभाव शब्द का यह अर्थ है कि मोक्षकाल में पृथक् प्रतिपत्ति की योग्यता नहीं रहती है। इससे मोक्ष समय में जीव ब्रह्म से अत्यन्त अभिन्न हो जाते हैं ऐसा जो कथन मायावादियों

का है वह दृष्टान्त प्रतिकूल होने से युक्ति संगत नहीं है अर्थात् अनुकूल नहीं पर दृष्टान्त प्रतिकूल है ॥८॥

स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति नास्या ब्रह्मवित्कुलेभवति । तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति ॥९॥

जो साधक जगप्रसिद्ध उस सर्वश्रेष्ठ परात्पर ब्रह्म श्रीरामजी को उपासना द्वारा जान लेता है वह उपासक ब्रह्म के समान ही होता है यहां ब्रह्म-आ-इव विच्छेद है ब्रह्म-एव नहीं । इस श्रीरामोपासक के कुल में श्रीरामतत्त्व को न जानने वाला उत्पन्न नहीं होता है। वह शोक से रहित हो जाता है एवं पाप से भी रहित हो जाता है और हृदय गुफा में स्थित रागद्वेष ग्रन्थि से विमुक्त होकर अमृत होता है यानी सायुज्य मुक्ति प्राप्तकर जन्म मृत्युरूप रोगों से सर्वदा के लिये छुटकारा पा जाता है ॥९॥

क्रियासिद्धौ सत्यामपि फलप्राप्तौ विघ्नोपधायकस्य कस्य कस्यचिद् दृष्टस्यादृष्टस्य वा सत्वे न फलोपलब्धिर्भवतीति दृष्टं लोके भवति तद्वदेव ब्रह्मसाक्षात्कारजनितेऽपि प्रतिबन्धके समुपगते कस्यचिन्मोक्षप्राप्तिर्न स्यादन्यैव काचिद्गतिः स्यादित्याशङ्कायामाह-स य इति । यः उपासकः तत्प्रसिद्धं पूर्वोक्तमन्त्रैः कथितम् । परमं सर्वत उत्कृष्टं ब्रह्म अक्षरं भूतयोनि शब्दितं परमात्मानं वेद साक्षात्करोति स ह विद्वान्

ब्रह्मैव भवति ब्रह्मसदृशमेव भवति अपहतपाप्मत्वादि ब्रह्मगुणाविर्भावाद् ब्रह्मपरमसाम्यलक्षणांगतिं मुक्त्य परपर्यायामेव गच्छति नान्यां गतिं यातीतिभावः। मुख्यं तत्त्वफलमुक्त्वाऽऽनुषङ्गिकं फलं वदति-नास्या ब्रह्मवित् कुले भवति। अस्य ब्रह्मविद उपासकस्य कुले कश्चित् पुत्रपौत्रादिरब्रह्मविद् ब्रह्मज्ञानविधुरो न भवति। तत्कुलोत्पन्नो ब्रह्मवेत्ता भवत्येव जनकस्येव राज्ञ इत्यर्थः। तरति शोकम्, स ब्रह्मविच्छोकमिष्टवस्तु प्राप्त्यभावनिमित्तं मानसं तापं तरति समतिक्रान्तो भवति जीवनकाले एव। परमेष्टरूपे ब्रह्मण्येव सर्वेष्टवस्तूनामन्तर्भावात् किं वैकल्यप्रयुक्तः शोक एनमास्कन्देदितिभावः। तरति पाप्मानं शोकशब्दवाच्य सन्तापमूलभूतं पाप्मानं धर्माऽधर्मरूपं तरति अति क्रान्तो भवति। सन्तापकारणं तापमपि ब्रह्माविदः तत्त्वज्ञानमहात्म्यादेव शीघ्रं विनश्यतीतिभावः। ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुतेऽर्जुनेति भगवद्व चनानुसारात्। गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तो गुहा हृदयकुहरं तत्सम्बन्धिन्यः तत्र वर्तमाना ग्रन्थिवद्दुर्मोच्यत्वाद् ग्रन्थिभूता अनादिकालतो रूढमूला रागद्वेषादयः ते भ्यः सवासनरागद्वेषादिभ्यो विमुक्तो परित्यक्तः ज्ञान माहात्म्यादेव प्रक्षीणसवासनरागद्वेषादिरितिभावः। एवं

भूतः सन् अमृतो भवति आविर्भूतापहतपाप्मत्वसत्य कामत्वादिरूपगुणाकष्टकविशिष्टो भवति ॥९॥

कारक व्यापार के रहते हुए भी यदि कोई दृष्ट अथवा अदृष्ट प्रतिबंन्धक का सद्भाव रहता है तो कार्य की सिद्धि नहीं होती है ऐसा लोक में देखने में आता है इसी तरह मोक्ष का कारण तत्वज्ञान के रहने पर भी प्रतिबन्धक बलात् किसी को मोक्ष प्राप्ति न हो अथवा तदन्य ही कोई गति होगी ? इस शंका के उत्तर में कहते हैं-'**स यो ह वै**' इत्यादि । जो कोई उपासक पूर्व मन्त्र कथित प्रसिद्ध उस परम सर्वतः उत्कृष्ट ब्रह्म अक्षर भूत योनि शब्द प्रतिपाद्य परमात्मा श्रीरामजी को जानता है अर्थात् साक्षात्कार करता है । वह विद्वान् ब्रह्मरूप ही हो जाता है अर्थात् ब्रह्म सदृश हो जाता है । अपहत पाप्मत्वादिक ब्रह्म गुण का आविर्भाव होने से ब्रह्म के परमसमता लक्षण गति मुक्ति को प्राप्त करता है । न तु मोक्ष व्यतिरिक्त गति को प्राप्त करता है । यहां यह ध्यान रहे कि '**ब्रह्मैव**' में '**ब्रह्म-एव**' विच्छेद नहीं है जिससे 'ब्रह्म ही' अर्थ घटित होता पर '**ब्रह्म-आ-इव**' विच्छेद है अतः अन्य समानार्थक प्रतिपादक श्रुतियां भी सार्थक-समन्वित होती हैं । ब्रह्मज्ञान का मुख्य मोक्षरूप फल को बतला करके अवान्तर ब्रह्मज्ञान के फल को बतलाते हैं-

'नास्या ब्रह्मविदित्यादि' इस उपासक ब्रह्मज्ञानी के कुल में कोई भी पुत्र पौत्रादिक ब्रह्मज्ञान रहित नहीं होता है अर्थात् उसके कुल में सभी ब्रह्मज्ञानी होते हैं विदेह राजा की तरहं। **'तरति शोकमिति'** वह ब्रह्मज्ञानी इष्ट वस्तु के प्राप्त्यभाव निमित्त शोक मानसिक ताप को अतिक्रमण कर जाता है जीवन काल में ही। अर्थात् परम इष्टरूप ब्रह्म में ही सभी इष्ट वस्तुओं के अन्तर्भाव होने से किस वस्तु के अभाव प्रयुक्त शोक इस ब्रह्मज्ञानी को होगा। **'तरति पाप्मानमिति'** शोकपदवाच्य जो संताप उसका कारणभूत जो धर्म अधर्म लक्षण पाप्मा तादृश पाप्मा को तत्वज्ञानी अतिक्रमण कर जाता है अर्थात् संताप का कारण धर्माधर्म भी तत्वज्ञान के माहात्म्य से विनष्ट हो जाता है। क्योंकि 'ज्ञानरूप अग्नि सर्वकर्म को भस्मसात् कर देती है' ऐसा भगवद्वचन है। **'गुहाग्रन्थिभ्यः'** इत्यादि। गुहा नाम है हृदय का तत्सम्बन्धी अर्थात् उसमें वर्तमान ग्रन्थि के समान दुर्मोच्य होने से ग्रन्थिरूप अनादिकाल से दृढ मूलक जो रागद्वेषादिक तादृश रागद्वेषादिक से विमुक्त हो जाता है अर्थात् तत्वज्ञान के बल से रागद्वेष रहित हो जाता है। एवं भूत उपासक अमृतरूप होता है। आविर्भूत अपहत पाप्मत्वादिक गुणाष्टक से युक्त होता है ॥९॥

तदेतदृचाऽभ्युक्तम्-क्रियावन्तः श्रोत्रिया ब्रह्मनिष्ठाः स्वयं जुह्वत एकर्षिं श्रद्धयन्तः । तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत शिरोव्रतं विधिवद् यैस्तु चीर्णम् ॥१०॥

प्रकृत ब्रह्मविद्या प्रदान नियम को अगले ऋग्वेद मन्त्र द्वारा पूर्ण रूपसे बताया गया है । जो निष्काम क्रिया वाले हों तथा श्रोत्रिय एवं ब्रह्मनिष्ठ हों और श्रद्धायुक्त होते हुये एकर्षि नामक अग्नि में नियमानुसार हवन करते हों तथा जिह्वोंने विधिवत् शिरोव्रत नामव्रत को सम्पादन किया है उह्नीं साधकों को ही इस ब्रह्मविद्या का उपदेश करना चाहिये ॥१०॥

सम्प्रति ब्रह्मविद्याप्रदानं यादृशाय कार्यं तादृशं पात्रविशेषं वर्णयन् उपसंहरति-तदेतद् । ब्रह्मविद्या सम्प्रदानविधानं ऋचा वक्ष्यमाणया वक्ष्यमाणेन मन्त्रेणेत्यर्थः । अभ्युक्तं प्रकाशितम् । वक्ष्यमाणमन्त्रेण ब्रह्मविद्यायोग्यः पात्रविशेषः प्रकाशितो भवतीतिभावः । मन्त्रमेव वदति-क्रियावन्त इति क्रिया वेदोक्ता नित्य नैमित्तिकरूपाः सन्ति येषु तादृशा यथोक्तकर्मानुष्ठान परा इत्यर्थः । श्रोत्रियाश्छन्दोऽध्ययनं कुर्वाणाः । ब्रह्म निष्ठा ब्रह्मणि निष्ठा जिज्ञासात्मिका स्थितिर्येषां ते ब्रह्म जिज्ञासमानाः । एकर्षिम् एकः ऋषिः ऋत्विग् यत्र स एकर्षिः एतन्नाम्ना प्रसिद्धमग्निहोत्रं कर्म, श्रद्धयन्तः तद्विषयकास्तिक्यबुद्धिविशिष्टाः सन्तः स्वयं जुह्वते ।

स्वयमेव जुह्वतीत्यर्थः । किञ्च आथर्वणिकानां यत् शिरोव्रतं शिरसि ज्वलदङ्गारपात्रधारणरूपं तद् विधिवत् शास्त्रोक्तविधानपूर्वकं यैः पुरुषैः चीर्णं समनुष्ठितं तेषामेव एकर्षिहवनकर्तॄणां विधिवच्चीर्णशिरोव्रतानाञ्च कृते एतां प्रकृतोपनिषदं ब्रह्मविद्यां ब्रह्मविद्याप्रतिपादकग्रन्थरूपां वदेदुपदिशेत् ॥१०॥

जिस व्यक्ति विशेष को विद्यादान देना है तादृश पात्र विशेष का वर्णन करते हुए उपसंहार करते हैं **'तदेदित्यादि'** ब्रह्मविद्या के सम्प्रदान के विधान को वक्ष्यमाण ऋचा मन्त्र से प्रकाशित करते हैं । अर्थात् वक्ष्यमाण मन्त्र से विद्या योग्य पात्र विशेष को प्रकाशित करते हैं । मन्त्र को बतलाते हैं **'क्रियावन्त'** इत्यादि । क्रिया वेदोक्त नित्य नैमित्तिकादि रूपा जिसमें है ऐसा जिसमें एतादृश नित्य नैमित्तिक कर्मानुष्ठान करने में तत्पर । श्रोत्रिय छन्द के अध्ययन करनेवाले तथा ब्रह्म में निष्ठा जिज्ञासारूपा स्थिति है जिनकी एतादृश ब्रह्म जिज्ञासा करनेवाले तथा एकर्षि एतन्नामक प्रसिद्ध अग्निहोत्र कर्म तद्विषयक आस्तिक्य बुद्धि विशिष्ट होते हुए स्वयमेव हवन करने वाले । और भी आथर्वणिक का जो शिरोव्रत है अर्थात् मस्तक के

ऊपर में जाज्वल्य मान अंगार भ्रमणरूप व्रत है उसे शास्त्रोक्त विधानपूर्वक जिसने अनुष्ठान कर लिया है उसीको अर्थात् एकर्षि हवन कर्ता तथा विधिवत् चीर्ण है शिरोव्रत जिनसे उन्हीं के लिये इस प्रकृत ब्रह्मविद्या का विधिवत् उपदेश देना चाहिये तदन्य को नहीं ॥१०॥

तदेतत् सत्यमृषिरङ्गिराः प्रोवाच नैतद चीर्णव्रतोऽधीते । नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः ॥११॥

卐 इति तृतीयमुण्डके द्वितीयः खण्डः-समाप्ता मुण्डकोपनिषत् 卐

अंगिरा नामक ऋषि ने पहले इस अक्षर पुरुष रूप सत्य तत्त्व को शौनक ऋषि को उपदेश दिया । जिसने नियमानुसार शिरोव्रत नहीं किया है वह इस मुण्डक तत्त्व को पढ नहीं सकता है । ब्रह्मविद्या प्रसारक उन परम ऋषियों को सादर नमस्कार है । ब्रह्मा अथर्वा अंगिर् सत्यवाह अंगिरा प्रभृति परम महर्षियों के साथ श्रीराम ब्रह्मतत्त्व बोधक ब्रह्मर्षि आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी को सादर साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम है ॥११॥

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्य

प्रणीता लघुदीपिका

卐 श्रीरामः शरणं मम 卐

तदेतत् सत्यमक्षरं परमपुरुषमङ्गिरा ऋषिः प्रोवाच उपदिदेश शौनकाय स्वशिष्याय विधिवदुपगम्य पृच्छा परवशाय करुणापरः सन्नित्यर्थः । एतदुपनिषद् रूपं ब्रह्मविद्याप्रतिपादकं शास्त्रमचीर्णव्रतो विधिवदननुष्ठित शिरोव्रतो नाधीते न पठति । अचीर्णव्रतैरियमुपनिषद् या शौनकाय प्रोक्ताऽङ्गिरसे सा नाध्येतव्येति चीर्णव्रता नामेव फलजनकत्वादितिभावः । पूर्वमन्त्रेऽध्यापकं प्रत्युक्तमत्र मन्त्रे तु अध्येतारं प्रत्युक्तमिति न द्विरुक्तिः । नमः परमऋषिभ्य इति द्विः कथनं समाप्तिद्योतनाय आ दरातिशयसूचनाय च । तेन समाप्तेयं ब्रह्मविद्या । इयं विद्या ब्रह्मादिपरम्परया यैर्लब्धा तेभ्यो परमऋषिभ्यो नमो मदीयो नमस्कार इत्यर्थः । तथा परम्परागता ये परमऋषयो ब्रह्मादयः परब्रह्मविषयकसाक्षात्कारवन्तः तेभ्यो नम इत्यर्थः ॥११॥

卐 इति भगवद्रामानन्दाचार्यविरचिते मुण्डकोपनिषद

आनन्दभाष्ये तृतीयमुण्डके द्वितीयः खण्डः ॥३-२॥ 卐

'तदेतत्सत्यम्' इत्यादि । उस सत्य अक्षर परम ब्रह्म का उपदेश अंगिरा ऋषि ने दिया । स्वकीय शिष्य विधिवत् उपगत शौनक को कृपापूर्वक उपदेश दिया । इस उपनिषत् रूप ब्रह्मविद्या का प्रतिपादक शास्त्र को जिसने विधिपूर्वक शिरोव्रत नहीं किया है वह न पढे ।

जिस विद्या का उपदेश शौनक ने अंगिरा को दिया है उसे अचीर्ण शिरोव्रत पुरुष न पढे किन्तु जिसने शिरोव्रत किया है वही पढे क्योंकि चीर्ण व्रत वाले को ही यह फलजनक होगा । अन्य के लिये फलजनक नहीं होगा । पूर्व मन्त्र में अध्यापक के लिये कहा है और इस मन्त्र में अध्याप्य के लिये कहा गया है अतः द्विर्वचन है । **'नमः परम ऋषिभ्यः'** इसमें जो द्विर्वचन है वह समाप्ति का द्योतक है अथवा आदरातिशय का सूचक है इससे यह सिद्ध होता है यह ब्रह्मविद्या समाप्त हुई । इस ब्रह्मविद्या की जिस गुरु ब्रह्मादिक से प्राप्ति हुई है उन परम ऋषियों के लिये मेरा नमस्कार हो अर्थात् परम्परागत जो परम ऋषि ब्रह्मा वगैरह हैं ब्रह्म साक्षात्कारवान् हैं उनको नमस्कार हो मेरा उन्हें सादर दण्डवत प्रणाम स्वीकार हो ॥११॥

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्य

प्रणीतानन्दभाष्य प्रकाशे

तृतीयमुण्डके द्वितीयः खण्डः

卐 श्रीरामः शरणं मम 卐

卐 卐